इतिहास पूर्व भारत

लेखक :

शान्ता केशवन एम. ए.

प्रकाशक :

एन. के. एन. ऐयंगार,

11/13, Mcnichol Road,

चेटपेट, मद्रास–31.

प्रस्तावना

इस पुस्तक में भारत के भूवैज्ञानिक इतिहास की चर्चा सरल भाषा में पाठकों के सामने रखने का प्रयत्न किया गया है। इसमें नव ग्रहों का विश्व में उत्पत्ति, पृथ्वी का उद्भव और ख़ास कर भारतवर्ष का प्राचीन मानचित्र, इसके मूल निवासी, पशु प्राणियाँ, और इसकी खनिज सम्पत्ति इत्यादि का वर्णन किया गया है। इस खनिज सम्पत्ति की जानकारी के साथ साथ भारत की औद्योगिक और आर्थिक अभिवृद्ध के विषय में भी जन-साधारण के लिए कुछ विचार प्रस्तुत किए गये हैं।

भारतीय भूतात्मिक समीक्षा (Geological survey of India) के भूत पूर्व पदाधिकारी श्री एन. के. एन अय्यंगार ने अंग्रेज़ी में एक पुस्तक लिखी है जो अभी प्रकाशित नहीं हुई है। उसी पुस्तक के आधार पर इतिहास-पूर्व भारत लिखी गई।

इसमें अधिकतर वर्णन श्री अय्यंगार जी के हिमालय के निचले पहाड़ों के भ्रमण और अनुमान पर आधारित है। इसमें भारत के विभिन्न भूवैज्ञानिक युगों के पेड़ पौधे और प्राणियों के चित्र भी दिए गये हैं जिनमें से कई चित्र अमेरिकन नेचुरल हिस्ट्री म्यूसियम, न्यूर्याक, के आधार पर खींचें गए हैं। पत्थरों में अंकित ऐतिहासिक प्राणियों के जीवाश्मों (Fossils) के आधार पर उनके अंगों की कल्पना की गई है।

इस पुस्तक में भारत की धातु विद्या और भूवैज्ञानिक इतिहास को संक्षिप्त रुप में कम से कम साँकेतिक शब्दों में वर्णन किया गया है। हिन्दी में वैज्ञानिक शब्दो के पर्यायवाची शब्दों का अभाव है इसीलिए ऐसे विषय का हिन्दी में वर्णन, कठिन हो जाता है और फिर हिन्दी मेरी

मातृ भाषा नहीं है। इन कठिनाइयों के होते हुए भी हिन्दी साहित्य में भूविज्ञान की सरल पुस्तकों के अभाव को यथा-शक्ति पूरा करने का प्रयत्न किया गया है। परंतु इन्हीं कठिनाइयों के कारण इस पुस्तक में कुछ अशुद्धियाँ आ गई है जिन्हें पाठक क्षमा करें।

आशा है हिन्दी प्रेमियों को भूविज्ञान की मनोरजंक कहानी को समझने और जानने में यह पुस्तक सहायता देगी।

शान्ता केशवन

विषय सूची

शुद्धिपत्र

पृष्ठ	पंक्ती	अशुद्ध	शुद्ध
१	१३	और	ओर
२	५	मुस्कुराते	मुस्कराते
३	८	सम्यता	सभ्यता
३	१८	ओर	और
४	२	किर	फिर
४	११	पुखशेषविज्ञ	पुरवशेषविज्ञ
७	१०	नदिकाऐ	नदिकायें
७	१५	बस	delete
७	१७	वर्षा	वर्षों
७	२०	ऐसा	ऐसा
१०	१२	दबाब	दबाव
१०	२०	बाप	आप
११	२	मैं	में
११	१२	बाह्म	वाह्य
१२	६	ऐसे	ऐसे
१४	१९	उसर्का	उसका
१६	६	मीषण	भीषण
१९	१०	अकर्षण	आकर्षण
२३	१४	लावणों	लवणों
२४	१२	वर्मों	वर्षों
३१	१	सुमद्री	समुद्री
३४	३	ऑग	आग

पृष्ठ	पंक्ती	अशुद्ध	शुद्ध
३४	२४	सुपाडी	सुपारी
४१	१२	प्रचीन	प्राचीन
४२	२१	जाँय	जायें
४२	२१	पारर्दशी	पारदर्शी
४६	६	भो	भी
४८	११	पृकार	प्रकार
५५	१२	बंगल	बंगाल
७४	१२	उद्भमेदनो	उद्‌मेदन
९६	१७	उद्गाम	उद्‌गम
९९	२	प्लीसटोनीस संककाल	प्लीसटोसीन संकाल
१००	१६	सम्यता की औेर	सभ्यता की ओर
१०४	४	धृवीय	ध्रुवीय
१०९	१५	(२००)	(Zoo)
१०९	२१	बितककुल	बिलकुल
१११	१२	पुरुषाम	पुरुषाभ
११५	११	प्रोप्लियोपिथियोकस	प्रोप्लियोपिथिकस
११८	८	वर्ष	वर्ष पूर्व
१२२	१५	इक्वियस	इक्वस
१२३	१७	यूरेप	यूरोप
१२७	१४	अबेवेलियन	अबिवेलियन
१३१	७	घष्ट	भ्रष्ट
१३१	२४	क्रोमेगनम	क्रोमेगनन

अध्याय १

हमारा देश

प्राचीन काल से ही संसार की आँखें भारत की ओर थीं; क्योंकि इस की संस्कृति, वैभव और अतुल धन-राशि सदा से ही विदेशियों को चकित करती आयी है। आपको याद होगा कि भारत से ही व्यापार करने की लिप्सा से कोलम्बस ने नई दुनियाँ का आविष्कार किया।

आज सैकड़ों आक्रमणों के बाद हमारे पास वह वैभव नहीं है; इतिहास प्रसिद्ध कोहेनूर और रत्न जटित मयूरासन हमने अपनी पुरानी कहानी में कभी कभी खो दिये। परन्तु जैसा वैभव रह गया है वह भी कम नहीं-इस देश का प्राकृतिक सौन्दर्य और इसकी खनिज सम्पत्ति।

कोई आश्चर्य नहीं कि शीत कटिबंध में रहनेवाले विदेशी भारत को "सूर्य भूमि" (Land of Sunshine) कहते हैं। अन्य देशों की तुलना में यह उप-महाद्वीप (भारत और पाकिस्तान) कितना विशाल है। उत्तर में हिमालय से लेकर दक्षिण में कन्या कुमारी तक और पूर्वीय चिटागौंग से पश्चिमी क्वेटा तक दोनों ओर दो हज़ार मीलों के करीब, हमारा देश व्याप्त है। उत्तर में हिमालय पर्वत-माला एक हज़ार सात सौ मीलों तक प्रकृति की अद्भुत कला और सौन्दर्य का प्रतिनिधि है और साथ-साथ आक्रमणकारियों के विरुद्ध एक महान दुर्ग है।

पर्वतों से प्रसूत बड़ी बड़ी नदियाँ हमारे देश की भूमि को सींचती हैं और भारत की कृषि समृद्धि करती हैं। सिन्धु, गंगा, ब्रह्मपुत्रा, गोदावरी इत्यादि इसीलिए प्राचीन काल से पूजनीय समझी गई-विशेष कर गंगा

अत्यंत पवित्र समझी गई है और देश के कोने कोने से यात्री इसमें स्नान करके अपने पापों को मिटाने के एकत्रित होते हैं। गंगा ने भारत के हृदय में वही स्थान लिया जो प्राचीन मिस्र में नील नदी ने। फिर भारत की दूसरी नदी, हमारे कहानियों और कल्पानाओं में बहने वाली यमुना, जिसके मुस्कुराते तटों पर श्रीकृष्ण ने अपनी रास लीलायें रचीं, हमें गंगा से कम प्रिय नहीं है ; और दक्षिण में कावेरी, गंगा के ही समान अतुल्य मानी जाती है और विन्ध्य पर्वत माला के उपरांत प्रदेशों में "दक्षिणी गंगा" के नाम से प्रसिद्ध है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि भौगोलिक दृष्टिकोण से भारत अत्यंत भाग्यशाली रहा है। समुद्र पर्वत, नदी, झरने, सब इस उपमहाद्वीप को आभूषित करके उसके प्राकृतिक सौन्दर्य को बढ़ाते हैं और साथ-साथ उसे खनिज सम्पति प्रदान करते हैं। यदि उत्तरी अमरीका और अफ्रीका अपनी नयागरा और विक्टोरिया प्रपातों पर गर्व और अभिमान करें, तो ९.०० फुट से अधिक उँचाई से गिरनेवाली शरावती की जरसोप्पा प्रपात पर हम अभिमान कर सक्ते हैं; मध्य प्रदेश में नर्मदा (जबलपुर के पास) उन्मादित होकर श्वेत सँगमरमर के गण्डाश्मों पर कूद पड़ता है। आपको झरने नहीं झील प्रिय हैं ? तो आइये काश्मीर में दाल और वुलार जैसे शोभाकार झील हैं जिन में हिमालय और आकाश झाँककर नित्य अपना सौन्दर्य देखा करते हैं।

ऐसे दृश्यों को देखने से हमें एक विचित्र अनुभव होता है। हमारा मन, प्रकृति की लीलाओं पर मोहित होकर, अहंकार और स्वार्थ से कुछ समय के लिए मुक्त हो जाता है। और फिर हम अपने से पूछने लगते हैं (क्योंकि मनुष्य उत्सुक प्राणी है और हर एक अनुभव का कारण जानना चाहता है) कि ये सुन्दर झील, झरने, नदी, पर्वत, कैसे बने ? क्या ईश्वर

ने एकाएक इनकी सृष्टि की या धीरे-धीरे प्रकृति ने करोड़ों वर्षों के संपरीक्षण (Experiment) के बाद इन्हें रचा है ?

ये प्रश्न और भी अधिक तीव्र हो जाते हैं जब हम अपने देश की सैर करने लगते हैं, क्योंकि हिमालाय से कन्याकुमारी तक हमें हर प्रकार का भौगोलिक और सामाजिक असमंजस्य दिखाई पड़ता है। एक ओर हिमाच्छादित काश्मीर, दूसरी ओर राजस्थान की विशाल मरुभूमि है, गंगा की समृद्ध मैदान और नीले समुद्रों के मध्य में स्थित दक्षिण-प्रदेश का जलवायु, सभ्यता संस्कृति इत्यादि संसार के भिन्न परिस्थितियो का प्रतीक है।

चाहे कोई यात्री, दुनियाँ के किसी भी देश से आये वह भारत से सन्तुष्ट रह सकता है। यदि वह आर्कटिक कटिबंध से आया हो तों उसे हिमाचल प्रदेश में उपयुक्त जलवायु मिलेगी, और अफ्रिका के लोग भारत के उष्ण प्रदेशों में अपना घर बना सकते हैं। कहने का मतलब यही है कि भारत एक तरह से संसार का ही प्रतिबिम्ब माना जा सकता है।

फिर रही भारत की प्राचीन सभ्यता और संस्कृति जिसके बारे में हम आजकल बहुत कुछ सुनते हैं। हम सब को पता ही है कि चार से पाँच हज़ार वर्ष पूर्व—अर्थात् हरप्पा और मोहनजोदडो के काल में भारत में सभ्यता की नीव पड़ चुकी थी। केवल मिस्र और चीन की महान सभ्यतायें इस परम्परा में आतीं हैं। और अब ये सब कहाँ हैं? केवल, मनुष्य के स्वप्न और जातीय स्मृति में। किन्तु भारत की प्राचीन संस्कृति, भले ही समय बीतने पर कितनी ही क्षीण हो गई हो, कम से कम आज भी जीवित है। आज भी जब हम आधुनिक जीवन से परेशान होकर प्राचीन कला के प्रतीकों की देखते हैं—और भारत के कोने कोने में इतिहास की झाँकी मिलती है—तो हमें फिर से सक प्रकार का उत्साह

मिलता है। हम सोचने लगते हैं कि जिस जाति ने रामेश्वरम्, अजन्ता, भुवनेश्वर, वेलूर, हलेबीड़, और फिर उत्तर में असंख्य मीनार, किले और महलों का निर्माण किया और जिसने कालिदास, शंकराचार्य और बुद्ध जैसे महापुरुषों को जन्म दिया, उसमें कुछ न कुछ सत्व छिपा ही होगा।

इस सभ्यता के विषय में इतिहासज्ञ हमें बताते है। फिर भी लिखित इतिहास के पृष्ठों में हमारे सब प्रश्नों का उत्तर नहीं मिलता। हम कहते हैं कि हाँ, दो या तीन हज़ार वर्षों से हमारे पूर्वज सभ्य थे। पर उससे पहले का क्या हाल है? भारत की मूल प्रजातियाँ क्या थीं? हज़ारों वर्ष पहले, पुरापाषाण काल (Paleolithic age) में मनुष्य गुफ़ाओं में वास करता था, वनों में भटकता था और शिकार करके अपना जीवन निर्वाह करता था। यह सब (archaeologists) पुरवशेषविज्ञ बताते हैं। जहाँ पर भूत काल की कथा, इतिहासज्ञ छोड़ देते है—क्यों कि चार—पाँच हज़ार वर्ष पूर्व उन्हें ऐतिहासिक लेख्य नहीं मिलते हैं—वहीं पुरवशेषविज्ञ उस कहानी को लेकर चार—पाँच लाख वर्ष पूर्व की सम्बन्ध—कटि (Connecting links) स्थापित करते हैं। यह कैसे किया जा सकता है? पुरवशेषविज्ञ उस प्राचीन समय के असंस्कृत मनुष्य के अनलाश्म (Flint) और पत्थर के यन्त्र (जो कि नदियों के उत्तलनों (River terraces) में पाये गये हैं) का अध्ययन करके अनुमान से उसका चित्र खींचते हैं। इसी प्रकार पुरापाषाण मनुष्य के यन्त्र निवास-स्थान, और गुफाओं के चित्रों (cave paintings) को देखने से, हमें इस इतिहास पूर्व अवधि का कुछ ज्ञान प्राप्त होता है।

पुरापाषाण काल के यन्त्र, गुफ़ाओं के चित्र इत्यादि के अध्ययन से पुरवशेषविज्ञ यह भी निश्चय करते हैं कि इतने हज़ार वर्षों के पूर्व मनुष्य किस हद तक सभ्य हो गया था। यदि वह गुफ़ाओं में रहता था तो इसका

अर्थ यह है कि वह अपनी रक्षा के लिए कोई घर नहीं बनाना जानता था। इससे प्रकट होता है कि सभ्यता की सीढ़ी में सब से नीची लड़ी पर उसका स्थान था। यदि कहीं प्राचीन काल का कोई घर मिला तब हम देखते हैं कि वह ईंट का है या पत्थर का। मनुष्य ने ईंट बनाना कब सीखा? जिन वस्तुओं का प्रयोग वह अपने यंत्रों और निवास–स्थानों में करता है वही उसकी सभ्यता के अभिलेख हैं। पहले पहले मनुष्य पत्थर, और अनलाश्म के "कच्चे" "अपरिष्कृत" (Crude implements) यन्त्र बनाता था। धीरे-धीरे उसने कुशलता पाई और ईंट बनाने लगा और साथ साथ मिट्टी के बर्तनों का उपयोग करने लगा। इसके पश्चात् उसने धातुओं का आविष्कार किया और अपने यन्त्रों के लिए इनका प्रयोग करने लगा। इस प्रकार अध्ययन और अनुमान करके पुरावशेषविज्ञ (Archaeologists) इतिहास के पूर्व के पाँच लाख वर्षों की कहानी हमें सुनाते हैं।

पर हम इतने से संतुष्ट नहीं हो सकते। हम कहने लगते हैं कि हाँ, पर पृथ्वी पाँच लाख वर्षों से पहले रही होगी। हमारे देश की उस प्राचीन समय में क्या स्थिति थी और संसार में उसका आज का सा आकार कब बना? इसके भौगोलिक चित्र में लाखों वर्ष पहले से अब तक क्या परिवर्तन हुऐ हैं? क्या महान् हिमालय, जो असंख्य वर्षों से हमारे द्वार की रक्षा करता आया है, और गंगा जिसके पवित्र जल में हमारे पूर्वजों ने सदा से अपनी राख बहा दी थी, किसी समय था ही नहीं? मनुष्य इस देश में कब आया? उसकी सभ्यता की ओर विकास कैसे हुआ? यदि हम इन प्रश्नों को पूछें तो इतिहासज्ञ और पुरावशेषविज्ञ हमें कुछ नहीं बता सकते। हमें इन प्रश्नों के विषय में भूवैज्ञानिक (geologists) ही बता सकते हैं क्योंकि इस भूमि के इतिहास का अध्ययन वे ही करते हैं। इनके करोड़ों वर्षों की कथा के सामने मानवीय इतिहास क्षणभंगुर है और मनुष्य प्रकृति की क्रीड़ा में एक खिलौना मात्र है।

इस प्रकार की भावनाओं को जगाने के अतिरिक्त संसार और उसके अन्तर्गत इस देश की प्राचीन भौगोलिक स्थिति, जलवायु, वनस्पति, और जीवित-प्राणियों के विषय में भौमिकीय इतिहास द्वारा ज्ञान प्राप्त होता है। भूवैज्ञानिक (geologists) बीते युगों के महाद्वीप, लुप्त सागर, और ज्वालामुखी पर्वतों के विषय में हमें एक अद्भुत कहानी सुनाते हैं।

यह कहानी पृथ्वी की उत्पत्ति के साथ आरंभ होती है और इस देश का भूवैज्ञानिक इतिहास (geological history) हमें दो सौ पच्छत्तर करोड़ वर्ष पूर्व से प्राप्त होता है। इतने युगों के पहले के पर्वत, नदी, झील, समुद्र आदि के विषय में हम जानने लगते हैं। फिर हम पूछने लगते हैं कि संसार में जीवित प्राणियों का उद्विकास कब से हुआ? पहले पहल इस देश के वनों में कौन कौन सी प्रजातियाँ बसी हुई थीं? यह कैसे आवास करती थीं और जीवन संघर्ष (Struggle for existence) में कैसे समृद्ध हुईं और आखिर लुप्त क्यों हो गईं?

इन प्रश्नों के उत्तर हमें भूवैज्ञानिक ही देते हैं। फिर संसार के नाटक में मनुष्य का आगमन, उसका कपि वंश से उद्विकास (evolution) और सभ्यता की ओर उसकी प्रगति, इत्यादि के विषय में ज्ञान प्राप्त होता है। भूवैज्ञानिक इतिहास में हमें मनुष्य और प्रकृति की प्राचीन कहानी मिल जाती है, और उसके साथ-साथ इतिहास पूर्व भारत की भी।

अध्याय २

भौमिकीय अभिलेख

(Geological records)

इतने में आप समझ गये होंगे कि एक भूवैज्ञानिक को न तो इतिहासज्ञ की तरह प्राचीन लेख्य मिलते हैं और न पुरवशेषविज्ञ की तरह यंत्र-अभिलेख। भूवैज्ञनिक (Geologist) को प्रकृति से ही ज्ञान मिलता है—क्योंकि जब संसार का इतिहास प्रारंभ हुआ तब कोई जीवित प्राणी या किसी प्रकार की वनस्पति (Vegetation) नहीं थी जो अभिलेख छोड़ जा सकें। अब हमें जानना चाहिये कि भूवैज्ञानिक प्रकृति से किस प्रकार तथ्य लेते हैं।

बरसात के समय यदि आप कभी किसी पहाड़ी प्रदेश में गये हों तो आपने देखा होगा कि वर्षा के बाद अनेक छोटी छोटी नदिकायें (rivulets) पहाड़ियों में बहने लगती हैं। ये नदिकाएँ कंकड़, पत्थर, साद मिट्टी इत्यादि को लेकर बहतीं हैं, और पहाड़ों में नालियाँ (grooves) काटती जातीं हैं। नीचे उतरकर वे किसी सरिता में, फिर उप नदी में (tributary) मिलतीं हैं, और अन्त में किसी बड़ी नदी में मिलकर समुद्र या बड़े झील में गिरती हैं। इस प्रकार पहाडियाँ हर साल घिस घिस कर अपनी रेत, साद इत्यादि नदियों को दे देती हैं और बस उनमें गोलाश्म और चट्टान बच जाते हैं। पहाडियों का सब से हलका द्रव्य साद, (silt) समुद्र या झील के अन्तर्गत अवसादित होता जाता है। करोड़ों वर्षों से उच्च भूमि से पदार्थ घिस-घिसकर नदियों से होते हुए बड़े बड़े झील और समुद्रों के फर्श में आकर जमते जाते हैं। हर साल लाखों टन वज़न का ऐसा पदार्थ नदियों द्वारा समुद्र में बहा दिया जाता है। पहले वर्षा ऋतु में
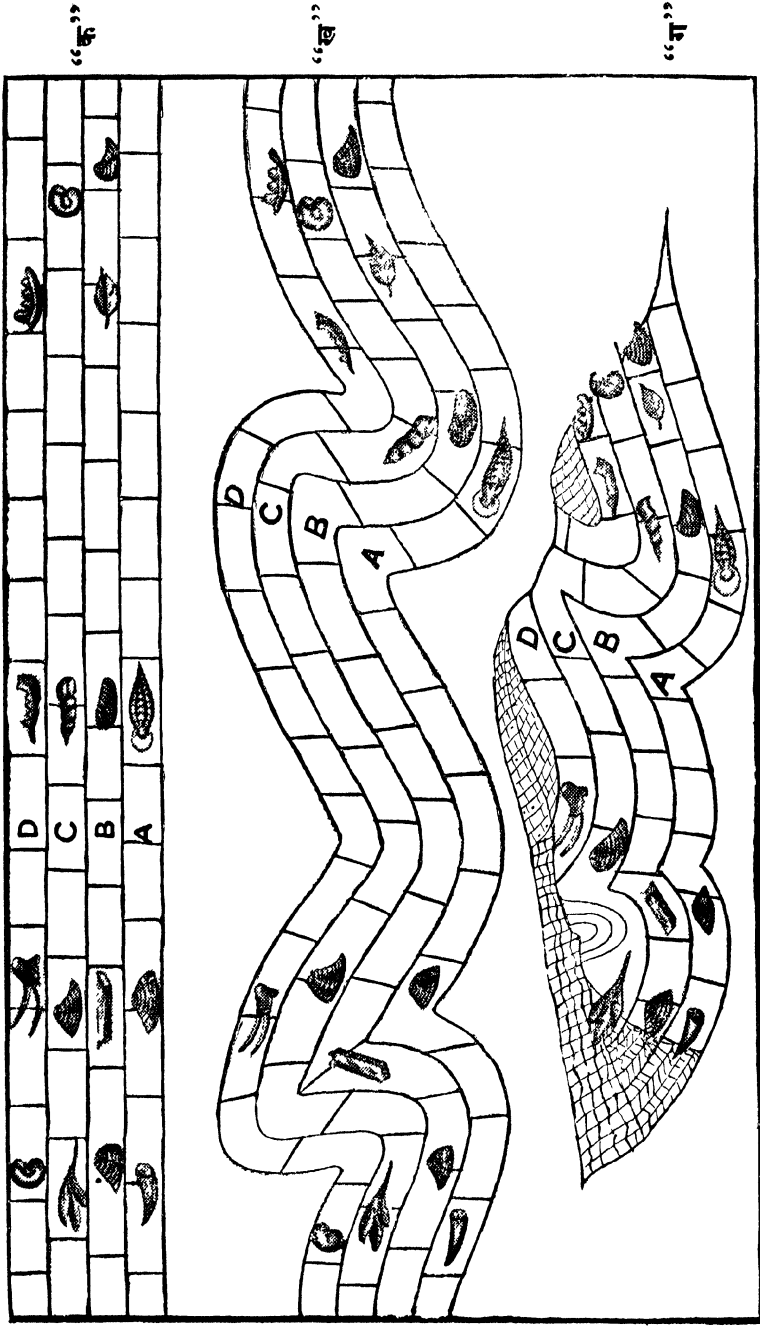
चित्र (1) जीवाश्म अभिलेख

एक परत (one layer) अवसादन (deposit) जमता है, और अगले मौसम में उसके ऊपर दूसरा। जैसे एक चादर पर दूसरा चादर हम बिछा सकते हैं, उसी प्रकार समुद्र के भूमितल (floor of the sea) पर हर साल एक परत बिछता जाता है।

अब हम जानते हैं कि नीचे के तह पर साद उसके उपरी तह से पुरानी है। चित्र (1) देखिये (Text fig. I) आप देखेंगे कि ए (A) बि (B) सी (C) डि स्थरलों में "ए" सब से पुरानी और "डि" सब से नवीन है। लाखों वर्षों से इसी प्रकार भूमि से पदार्थ अवसादित होकर, गंगा, सिन्धु, ब्रह्मपुत्रा, एमजोन नील आदि की नदी मुखों (river mouths) में विराट त्रिकोण मुख (gigantic deltas) बनते जाते हैं। यदि संभव होता कि हम एक नदी मुख को चोटी से तह तक ठीक बीच में काटें (vertical line down wards) तो हमें लाखों तह, साद, मिट्टी, बालू इत्यादि एक के ऊपर एक बिछी हुई मिलेंगी। आप अब कहेंगे कि यदि करोड़ों वर्षों से ऐसा होता आया है और पृथ्वी से पदार्थ समुद्र में बहता गया है तो संसार का समस्त भू-तट जलाच्छादित क्यों नहीं हो जाता? उसके लिए भूवैज्ञानिक यह उत्तर देते हैं कि ऐसा कभी नहीं हो सकता, क्योंकि इसके प्रतिविधान में पृथ्वी-में आन्दोलन मचते रहते हैं जिनके परिणाम से समुद्र से अन्य स्थलों में भूतल उठता ही रहता है।

नदियों में द्रव्य ही नहीं अनेक प्रकार की वनस्पति लकड़ी, पत्ते और कभी कभी पशु शव इसी प्रकार तेज़ प्रवाह में बहकर नदी-मुखों तक पहुँच जाती हैं। जब यह प्रवाह धीमा हो जाता है तब ये सब सामग्री नदी के फर्श में ही जम जाती हैं। इस प्रकार हर मौसम के द्रव्य स्थरल (earthy matter) के अन्तर्गत जैव पदार्थ (organic matter) भी काल क्रमानुसार (chronologically) जमता जाता है। इस प्रकार "ए" चादर

में जमा हुआ निक्षेप "बि" चादर में जमें हुए से प्राचीन हैं। "सि" और "डि" चादर "ए" और "बि" के पश्चात् अवसादित होते हैं। इधर यह भी समझना चाहिये कि पानी में रहनेवाले जीव और पौधे भी मृत्यु के बाद समुद्र या झील के फर्श के विभिन्न तहों में जमते जाते हैं।

पहले कहा जा चुका है कि जैसे जैसे भूमि तट में अपरदन (erosion) होता जाता है उसी के साथ साथ पृथ्वी के अंतर्गत उथल-पुथल के कारण और किसी स्थान में समुद्र से भूमि तट ऊपर उठता जाता है। यह भूतह महीन चूर्ण, लइम सिल्ट (refined lime silt) और बालू का होता है। जब भौगोलिक हलचल से समुद्र का फर्श इस प्रकार ऊँचा हो जाता है तब वह उच्च-सम-भूमि (high flat land) और पहाड़ियों में बदल जाता है। इस तरह जब पहाड़ियाँ समुद्र से उठतीं हैं तब पृथ्वी के अन्दर से इतना अधिक दबाब (pressure) पड़ता है कि रेत (sand) बलुआ-पत्थर (sandstone) में परिणत होता है और चूना, चूना पत्थर (limestone) में, और साद शेल (shale) में परिवर्तित हो जाता है। पृष्ठ में चित्र (1) देखिये।

कभी कभी नदी के फर्श के तहों में उथल पथल होने के कारण नीचे का चादर ऊपर को और ऊपर का नीचे को हो जाता है। यों तो बहुत कम होता है और जहाँ पाया गया है वहाँ भू वैज्ञानिक अपने अनुभव से इन चादरों का अनुक्रम (date) पाते हैं।

इस पर आप पूछेंगे कि जो वनस्पति और पशु शव जल में अवसादित होते हैं उन पर दबाव पड़ने से क्या होता है? यदि जैव पदार्थ समुद्र के अन्तर्गत लाखों वर्षों तक समाधित रहता है और वायुमण्डल क्रिया (atmospheric action) के लिए विगोपित (exposed) नहीं होता तब इसमें बहुत परिवर्तन हो जाता है।

जीवाश्म क्या है :—

उदाहरण में लीजिये कि एक वृक्ष का तना (tree trunk) इस प्रकार समुद्र या नदी के फर्श में दबा हुआ है, और उसके ऊपर असंख्य तहों में मिट्टी साद इत्यादि जमता जाता है कि उनके बोझ से वह संपीडित (compressed) हो जाता है और उसके अन्दर ताप उत्पन्न होता है। धीरे धीरे उस वृक्ष का मृदुतम भाग का जल में विलयन हो जाता है और बचे हुए ठोस भाग पर अक्सीजन, (oxygen), हैड्रोजन (hydrogen), गंधक (sulphur), और ताप की क्रिया से वह कोयले में परिणत हो जाता है। युगों तक इसी प्रकार दबे रहने से वह तना चूनापत्थर, या लोहापत्थर में भी परिवर्तित हो सकता है। इसी प्रकार क्रमशः लाखों वर्षों में जैव पदार्थ अजैव पदार्थ (Inorganic matter) में बदल जाता है। वाह्य रूप से उस तने में कोई अन्तर नहीं दीखता, पर उसे छूने और उठाने से पता चलता है कि वह बहुत भारी और ठंडा हो गया है। यदि एक छोटा सा पत्ता इस प्रकार पानी में जमें रहे तो उसमें क्या परिवर्तन होगा ? पत्ते के ऊपर का मृदु चर्म पानी में घुल जायेगा और शेष कार्बन (carbon) किसी भी अवसादन के पत्थरों में टिका हुआ मिलेगा। इस महीन कार्बन के पटल में उस पत्ते की बनावट, उसके नसों की जाल, साँस लेने के रंध्र (breathing pores) इत्यादि, अच्छी तरह दिखाई पड़ते हैं।

वनस्पति के अलावा यदि पशुशव इस प्रकार पानी में रह जायँ तो उस पर क्या क्रिया होगी ? माँस, बाल, मृदु चर्म इत्यादि का पानी में बिलयन होगा और ठोस हड्डी का ढाँचा बच जायेगा। हड्डी के रंध्रों में अजैव पदार्थ जैसे जिपसम (Gypsum), चूना, लोहा, इत्यादि जमते जाते हैं। जब लाखों वर्ष बाद हम किसी नदी या समुद्र से निकले हुए भूमि में ऐसे ढाँचें को पाते हैं, तब उसके आकार में पहले से कुछ परिवर्तन नहीं

दीख पड़ेगा, परन्तु उसकी संरचना (composition) में काफ़ी परिवर्तन हो जायेगा। यह अन्तर एक दो वर्षों में नहीं बल्कि लाखों वर्षों में होता है।

इस तरह समुद्र या नदी तल (floor of the sea or river) में अवसादित जैव पदार्थ, (organic matter) अर्थात् पशुशव, पौधे, वृक्ष, पत्ते, इत्यादि को वैज्ञानिक भाषा में जीवाश्म (fossil) कहते हैं। यही जीवाश्म भू वैज्ञानिक के प्राकृतिक अभिलेख (natural records) हैं।

अध्याय ३

अभिलेखों का निर्वचन

(Interpretation of records)

पहले अध्यायों में हमने जीवाश्मों की उत्पत्ति के विषय में सुना। अब हम पूछेंगे कि पत्थर और जीवाश्म के अध्ययन से भौमकीय इतिहास तिथि-क्रम से कैसे लिखा जाता है? ऐसे इतिहास के लिए इन प्राकृतिक अभिलेखों को अच्छी तरह समझना चाहिये। इस प्रकार जीवाश्मों और प्राचीन खनिज आदि की व्याख्या के पहले हमें भूगोल का अच्छा ज्ञान प्राप्त करना चाहिये क्योंकि आज की भौगोलिक परिस्थितियों को समझने के बाद ही हम प्राचीन परिस्थितियों का अनुमान कर सकते हैं। उदाहरण लीजिये:—आज भी नदी और झील और समुद्र के फर्शों में चूना, साद, मिट्टी एक के ऊपर एक तह में अवसादित होता है, उसी प्रकार प्राचीन समय में भी हुआ होगा। इसी तरह साधारण चट्टान और प्राचीन काल के ज्वालामुखियों द्वारा फेंके हुए डेब्रिस (debris) के अन्तर का भी हम भौगोलिक ज्ञान से ही पता चलाते हैं।

जब हम आजकल की वनस्पति और प्राणियों को देखते हैं तो उनमें कई दिलचस्प तथ्य पाते हैं। समुद्री ज़ीवों को हम नदी और झीलों के स्वच्छ पानी में रहनेवाली जीवों से बिल्कुल भिन्न पाते हैं। इसके अतिरिक्त स्थल प्राणियों के विभिन्न प्रजातियों में भी शरीर घटन, आकार, आहार, रहन-सहन आदि में बहुत अन्तर है। कुछ प्राणियाँ, शेर, हाथी, ऊँट, आदि उष्ण कटिबंध के निवासी हैं, और कुछ प्राणियाँ जैसे ध्रुवी ऋक्ष (polar bear) वाह मृग (Reindeer) चमरी (yak) आदि अत्यन्त ठंडे प्रदेशों में ही जीवित रह सकते हैं।

पेड, पौधौं में भी विभन्न प्रजातियाँ भिन्न परिस्थितियों में समृद्ध होती हैं। समुद्री पौधे नदी और झील के स्वच्छ पानी में नहीं रह सकते। उष्ण कटिबंधी वृक्ष नारियल, आम, केले इत्यादि ठंडी आबहवा में नहीं जीवित रह सकते। इसी प्रकार पर्णाँग (ferns) शंखधर (conifers) आदि वृक्ष प्रजातियाँ ठंडे देशों में रह सकती हैं। खजूर का वृक्ष मरु-भूमि में जीवित रहता है। इस प्रकार की आधुनिक भौगोलिक विषयों की जानकारी को लेकर हम प्राचीन परिस्थितियों की कल्पना करते हैं। इस प्रसंग में एक कहानी सुनिए। अरेबिया की मरुभूमि में एक ऊँट चालक ने अपना ऊँट खो दिया। उसने पास के गाँव में एक यात्री से पूछा "आपने हमारा ऊँट कहीं देखा है?" उस महाशय ने उत्तर में पूछा "क्या वह ऊँट एक पैर में लंगड़ा है?" चालक ने कहा—"हाँ"। फिर यात्री ने पूछा "क्या वह दाहिनी आँख से अंधा है?"। चालक ने फिर उत्तर दिया "हां"। यात्री ने पूछा, "क्या उसकी पीठ की एक तरफ़ शहद, और दूसरी तरफ़ गेहूँ का थैला लदा हुआ है? चालक ने कहा, "हाँ, तुम इतना जानते हो, तुमने उसे ज़रूर देखा है। लाओ मेरा ऊँट।" किन्तु यात्री ने उसे समझाया कि ये सब उसने

सिर्फ़ अनुमान से ही बताया है क्योंकि उसने पथ पर एक ऊँट के तीन पैरों की ही छाप देखी, चौथे की नहीं और उसने ग़ौर किया कि पेड़ों के ऊपर भी केवल एक तरफ़ के पत्ते खाये गये थे, दूसरी तरफ़ के नहीं। ज़मीन पर भी एक पंक्ति में गेहूँ और दूसरी पंक्ति में शहद की बूँदें छिटकीं हुई देखीं। इन सब से उसने लंगड़े, अन्धे और शहद व गेहूँ से लदे हुए ऊँट की कल्पना की। इसी प्रकार के अनुमान से ही भूवैज्ञानिक को प्राचीन काल का ज्ञान प्राप्त होता है।

जीवश्म भौमिकीय तिथिपत्री हैं :—(fossils are geological calender)

जीवाश्मों पर ही भौमिकीय इतिहास की नींव पड़ती है। यदि कहीं पर पत्थर या गोलाश्म मिलें तो भूवैज्ञानिक उसमें चिपके हुए जीवाश्मों को ढूँढते हैं, और उस पत्थर के बनावट (structure) से भी काफ़ी ज्ञान प्राप्त करते हैं। इतने वर्षों के बाद प्रायः हरएक जीवाश्म अपूर्ण ही मिलता है। करोड़ों वर्षों के पश्चात् पूरा-पूरा जीवाश्म का मिलना असंभव ही समझा जाता है। इस विचार के अपवाद (exception) में एक प्राचीन हस्ति जाति का भीमगज (mammoth) सैबीरिया (Siberia) में पूर्ण जीवाश्म रूप में मिला। यह हाथी पचास हज़ार वर्ष पहले जीवित था, और हिम से ढके रहने के कारण मूल रुप में सुरक्षित रह गया, यहाँ तक कि उसके शरीर का एक अंग भी अपक्षीण (decay) नहीं हुआ था। बर्फ़ में गढ़े रहने के कारण उसका मांस स्वच्छ था जैसे वह हाल में ही मरा हो।

ऐसे भी अनेक उदाहरण हैं जहाँ छोटे-छोटे मकोड़े तृण-मणि या अम्बर (Amber) के अन्दर ज्यों के त्यों रह गये हैं। परन्तु नदी के उत्तल आदि में मिलने वाले जीवाश्म टूटे फूटे ही प्राप्त होते हैं। पर इन अपूर्ण अस्थिपंजरों से भी भूवैज्ञानिक प्राचीन जीवित प्राणियों के विषय में काफ़ी अनुमान कर लेते हैं। यदि किसी प्राचीन पौधे के कुछ पत्ते ही मिलें,

उससे भी उसकी प्रजाति, काल, और उस समय की जलवायु का ज्ञान मिल सकता है। यदि ऐसे प्राचीन पौधे का अण्वीक्ष (microscopic bits) मात्र भी मिलें तो उस पौधे का वंश और उसका उसी वंश के आधुनिक पौधों से संबंध स्थापित किया जा सकता है। किसी वृक्ष के जीवाश्म शाखा (fossil branch) से उस वृक्ष का भौमिकीय या भूवैज्ञानिक इतिहास का चलता है। छोटे-छोटे पत्ता जीवाश्म टुकड़ों को एक मैक्रोस्कोप से देखने से उनका शारीर (Anatomy) हम जान सकते हैं। समुद्री शंखों की बनावट से हम कह सकते हैं कि किस प्रकार का प्राणी उसमें जीवित था। भूमि पर रहनेवाले प्राचीन जानवरों का पूर्ण जीवाश्म प्रायः कभी नहीं मिलते हैं, पर उनकी कपाल (skull) और दन्तों (dentition) से उसकी जाति का अनुमान ठीक तरह से किया जा सकता है। दन्तों के अध्ययन से पता चलता है कि फलाना जीवाश्म माँसाहारी प्राणी का है या नहीं। कभी कभी पत्थरों पर जानवर के पैरों की छाप से पता चलता है कि उस युग में किस प्रकार के जीव निवासित थे।

इस प्रकार जैव पदार्थ याने वृक्ष पौधे, पशु आदि के जीवाश्म अध्ययन से भूवैज्ञानिक तिथिक्रम से विभिन्न युगों के अंगीय जीवों के परम्परागत उद्विकास का इतिहास निश्चय करते हैं। जैसे पहले कहा जा चुका है, ये जीवाश्म समुद्र या नदी के फर्शों के चादरों में पाये जाते हैं। इन चादरों के अध्ययन से निश्चय किया जाता है कि "क", "ख", "ग", चादरों में ये "क" चादर में पाये हुए जीवाश्म सब से प्राचीन वृक्ष और पशु प्रजातियों के हैं और "ग" में सब से नवीन प्रांगारिक निक्षेप मिलते हैं। इन्हीं जीवाश्मों के अध्ययन से उनकी तिथि के साथ यह भी पता चलता है कि वे समुद्री या भूमि के निवासी थे और उनका शारीर (Anatomy) कैसा था और फिर उनका उद्विकास कैसे हुआ। (चित्र (1))

जीवाश्म अभिलेख की सहायता से ही भूवैज्ञानिक पृथ्वी के भौमिकीय इतिहास को मानवीय इतिहास (human history) की तरह कई युगों में बाँटते हैं। इन युगों की कथा में वे बताते हैं कि किस प्रकार पृथ्वी प्राचीन काल से विक्षुब्ध रही; किस तरह कुछ न कुछ उथल-पुथल सदा पृथ्वी में मचता रहता था—कभी भूकम्प कभी हिमानियों का प्रवाह, कभी भीषण आँधी, बहाड़, ज्वालामुखीय उद्भेदन, समुद्र का भूमि पर आक्रमण, नदियों का उद्भव, और आखिर में संसार के महान् पर्वत श्रृंखलाओं का उच्छादित होना। यह सब विषय हम भौमिकीय इतिहास में पायेंगे। साथ-साथ, पहले पहले जीवित प्राणियों के विषय में भी हम जानेंगे कि वे किन प्रजातियों के थे, उनका आकार, भोजन इत्यादि क्या था, और फिर वे प्रकृति के जीवन-संघर्ष (Nature's struggle for existence) में कैसे विनष्ट हुए।

भौतिकी शास्त्र (Pbysics) की सहायता से ही बीते युगों के विषय में निश्चय से कह सकते हैं कि एक एक युग लगभग कितने वर्षों की अवधि है। हाल में वैज्ञानिकों ने कहा है कि जीवाश्मों के द्वारा समय (time) को नाप सकते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि हर एक अँगीय जीव (organism) अपने जीवन में वायुमण्डल (atmosphere) से कार्बन-डै आक्सैड (carbondioxide) ग्रहण करता है। इस कार्बन (carbon) में एक प्रकार की तेजोद्विर श्वास (Radio active emanation) छिपी रहती है, जो कि पाँच हजार वर्षों में नैट्रोजन (nitrogen) में परिवर्तित हो जाती है। इसलिए एक जीवाश्म में नैट्रोजन की जो मात्रा है, उसे नापने से उस जीवाश्म की आयु का पता चल सकता है। इसी प्रकार हम जानते हैं कि किस युग में किस प्रकार के जीवित प्राणी निवास करते थे।

अध्याय ४

पृथ्वी और सौर-संहित की उत्पत्ति

(Origin of the earth and solar system)

भारत की उत्पत्ति की कथा पृथ्वी के उद्विकास के साथ ही बंधा हुआ है। इसीलिए हमें पहले समझना चाहिये कि इस संसार का विश्व में आगमन कैसे हुआ।

हमारे धार्मिक विचारों के अनुसार ईश्वर ने ब्रह्माण्ड की सृष्टि की। बैबिल में भी ऐसा ही कहा गया है, "पहले ईश्वर ने आकाश और पृथ्वी को बनाया, पर पृथ्वी निराकार और शून्य था। (In the beginning God created the heavens and the earth, the earth was formless and void)" इसी प्रकार यहूदियों (Jews) में भी मानते हैं कि ईसा से ४००४ वर्ष पूर्व ईश्वर ने विश्व और इस पृथ्वी की उत्पत्ति की। "कुरान शरीफ के अनुसार भी अल्लाह ने पृथ्वी और आकाश को सत्य से बनाया (He created the heavens and earth with truth")

इन विचारों के विपरीत वैज्ञानिक दृष्टिकोण से भी पृथ्वी की उत्पत्ति के सिद्धान्त प्रस्तुत किये गये हैं। यद्यपि आधुनिक विज्ञान का इतना अधिक विकास होने पर भी पृथ्वी के उद्भव रहस्य के विषय में एक मत नहीं है। भूवैज्ञानिक, भौतिकीविज्ञ (Physicist) ज्योतिषक (Astronomer) जीविकीविज्ञ (Biologist) इत्यादि वैज्ञानिक, विभिन्न धारणाओं को अपनाते हैं। परन्तु प्राचीन काल से सभी वैज्ञानिक इस समस्या को हल करने के लिए आतुर रहे हैं।

नीहारिका-वादः (Nebular thesis)

प्राचीन भारत, मिस्र और यूनान के दार्शनिकों ने पृथ्वी के आविर्भाव पर अपने-अपने सिद्धान्त तय किये। भारत के साँख्य दर्शन (Sankhya philosophy) में एक प्रकार के उद्विकास की कल्पना की गई।

उसके अनुसार अचेत प्रकृति पर क्रियात्मक पुरुष के प्रभाव से संसार का उद्विकास आरंभ हुआ। १७५५ में जर्मनी के प्रसिद्ध दार्शनिक इमेन्युयेल कान्त (Imannuel Kant) ने कहा कि सौर संहित (Solar system) जिसमें पृथ्वी भी एक ग्रह है अपने मूल रूप में एक विराट नीहारिका (gigantic Nebula) थी। उसके अनुसार सौर संहित उस काल में आज के किरात नक्षत्र (Orion) की तरह थी। फिर 1796 में फ्रान्सीसी वैज्ञानिक लाप्लेस (Laplace) ने इसी भावना को बढ़ाकर कहा, कि सौर संहित उस युग में एक कुन्तलाकार नीहारिका (Spiral nebula) थी जैसे आजकल भाद्रपदा (Andromeda) का नक्षत्र संग्रह है। जब वह वातीय मेघ समय के साथ-साथ संघीन होती गई तब उसके अन्दर से दूर-दूर तक नीहारिका-समूह (Nebular masses) गिरती गईं। ये समूह मूल नीहारिका का चक्कर लगाने लगीं। युगों के बीतने पर यह समूह कुछ ठंडी और संघनित होती गईं, और सौर संहित के नव-ग्रहों (Nine planets) में उद्विकसित हुईं। इस नव-ग्रह संहित की न्यष्टि (Nucleus) हमारा सूर्य ही है। यद्यपि इस स्पष्टीकरण को अनेक वैज्ञानिक मानते हैं कईयों ने गणित शास्त्र के अनुसार इसकी समालोचना की है।

गृहाणु-उपकल्पना: (Planetismal hypothesis)

दूसरे सिद्धान्त को प्रोफेसर चेम्बरलेन और मौल्टन (Chamberlain) & Moulton ने प्रस्तुत किया। इनके अनुसार सुदूर अतीत (Remote past) में भी हमारा सूर्य विद्यमान था। किसी प्राचीन काल में एक बृहद् तारा सूर्य की कक्ष्या के पास अपने भ्रमण में आ पहुँचा। उस तारे के आकर्षण से छोटे-छोटे समूह सूर्य से खिचकर इधर-उधर छिटक गये। फिर सूर्य की ओर अभ्याकृष्ठ होकर (Gravitational pull) उसकी चक्कर लगाने लगीं। धीरे-धीरे अनेक ऐसे समूह मिलकर संघनित होते गये और एक-एक ग्रह में बदल गये। इस सिद्धान्त के अनुसार सौर संहित एक आकस्मिक

(Accidental) घटना (याने सूर्य के मार्ग पर दूसरे तारे का आना) से उत्पन्न हुआ। इनकी राय में सूर्य उस काल में वातीय (Gaseous) नहीं वरन् ठोस अवस्था में ही था।

वेलीय सिद्धान्तः (Tidal theory)

आधुनिक सिद्धान्तों में सर जेम्स जीन्स (Sir James Jeans) और हेच. जेफ्री (H. Jeffery) दोनों प्रमुख जूयोतिषकों का वेलीय सिद्धान्त (Tidal theory) है। इस सिद्धान्त में अनुमान किया जाता है कि सुदूर अतीत में जब हमारा सूर्य कहीं अधिक विशालकाय और ज्योतिर्मय था तब उसकी कक्ष्या (Orbit) पर दूसरा तारा आ पहुँचा। इस तारे के प्रभाव से सूर्य में वेला तरंग (Tidal waves) जैसे पृथ्वी में आज भी समुद्रों के अकर्षण से ज्वार भाटा (Tide & ebb) होता है उसी प्रकार, पर कहीं बड़ी मात्रा में होने लगे। इसका परिणाम यह था कि इस तारे ने सूर्य से एक महान वाति अंशु (Gaseous filament) अपनी ओर खींच ली। कुछ समय बाद वह सितारा अपने भ्रमण में चला गया, और कुछ दूर तक वाति-अंशु को ले गया। यही वाति अंशु छोटे-छोटे समूहों में बँट गया जो कि ठंडे व संघनित होने पर नव-ग्रहों के रूप में परिणत हुए।

विखंडन सिद्धान्त (Fission theory)

रोस गन्न (Rose Gunn) नामक वैज्ञानिक के अनुसार जब सूर्य जैसा कोई विशाल तारा तेज़ी से चक्कर लगाते हुए संघनित होता है और जब उसकी कक्ष्या के पास कोई और तारा आ जाता है, तब वह अपनी तीव्र गति में दो या अधिक टुकड़ों में फूट जाता है। ये ही टुकड़े समय में संघनित होकर उसके ग्रहों (Planets) में परिवर्तित होते हैं, और उसको अपनी न्यष्टि (Nucleus) मानकर उसकी चक्कर लगाने लगते हैं।

वातीय आवरण उपकल्पना: (Gaseous envelope hypothesis)

१९४४ में डाक्टर वोन वीसेकर (Dr. Von Weizacker) ने एक और सुझाव वैज्ञानिकों के सामने रखा जो कुछ कुछ लाप्लेस के सिद्धान्त के समान था। उसके अनुसार विश्व में एक तारे और दूसरे तारे के बीच अत्यन्त घना और व्यापक वाति मेघ रहता है। किसी समय, इनकी उप-कल्पना (hypothesis) में सूर्य इस वाति मेघ में डूब गया होगा। लाखों वर्षों तक डूबे रहने के कारण वह अपने में उस मेघ के लवों (particles) को ग्रहण कर लेता जो उसकी चारों और एक वातीय आवरण (Gaseous envelope) की तरह घिरा रहता था। इस आवरण के ही टुकडे अंत में सौर-संहित के नव-ग्रह बने होंगे।

द्वयि वाद: (Binary theory)

प्रोफ़ेसर हेच. रसल, (Prof. H. Russel) की राय में सूर्य पहले एक तारा नहीं बल्कि दो तारों का जोड़ा था। विश्व में अनेक ऐसे युग्म तारे देखे जाते हैं—उदाहरण स्वरूप आज के मिथुन नक्षत्र (Gemini) को लीजिये। इसमें दो तारे एक दूसरे की चक्कर मे घूमते हैं। उसने ऐसी परिस्थिति की कल्पना की जिसमें कि एक तीसरा और अधिक प्रभावशाली तारा इनकी कक्ष्या के पास आया। उससे आकृष्ठ होकर युग्म तारे, दो भिन्न टुकडों में बँट गये और छोटा टुकड़ा बड़े तारे के पीछे लगा। जब वह तारा अपने भ्रमण में चला गया तब छोटा टुकड़ा अन्य समूहों में विभाजित होकर बड़े समूह (सूर्य) के चारों तरफ़ घूमने लगा।

स्पन्दन-वाद:

श्री बनरजी नामक भारतीय वैज्ञानिक ने अपने सिद्धान्त में सूर्य को एक बृहद तारे के सदृश्य कल्पना की है, जिसमें लयबद्ध स्पन्दन (Rhythmic Pulsation) होता रहता है। जब कोई और तारा उसकी कक्ष्या (orbit) पर

आता है तब उसके स्पन्दन का ताल अधिक तीव्र हो जाता है और उसमें से द्रव्य दूर दूर तक फिंकने लगते हैं जो कि समय में संघनित होकर हमारे सूर्य और उसके नव-ग्रहों में बदलते हैं।

नोवा-सिद्धान्त (Nova theory)

नोवा थियरी (Nova theory) में भी सूर्य और उसके युग्म तारे की कल्पना की गई। इस दूसरे तारे के अंतर्गत मोलेक्यूलर क्रिया (molecular action) होने से वह और अधिक विशाल होता गया और अन्त में फूटकर नव-ग्रहों में परिणत हुआ जो कि सूर्य की चक्कर लगाने लगे।

ये सब सिद्धान्त परिकल्पित है और निश्चय से नहीं कहा जा सकता कि कौनसा उचित है। पर हम इतना समझते हैं कि पूर्व काल में हमारा सूर्य एक अत्यन्त तेजोमय तारा था, जो कि विश्व में अपनी कक्ष्या पर द्रुत वेग से चक्कर लगा रहा था। असंख्य युगों के बीतने पर उसका वेग और ताप घटता गया और वह संघनित होने लगा। इस प्रकार संघनित होने की क्रिया में उसने दूर दूर तक अपने में से द्रव्य फेंके, जो संभवतः वलय सदृश (Ring like) आकार के थे। ये वलय समूह अपने अक्ष पर परिभ्रमण करते गये और साथ साथ गोलाभ पुंजों (Spheroidal masses) में परिवर्तित होने लगे। ये गोलाभ पुंज सूर्य की ओर अभ्याकृष्ठ (Gravitational attraction) होकर उसकी चक्कर लगाने लगे और हम आज इन्हीं को सौर-संहित (solar system) का नाम देते हैं। पृथ्वी भी अन्य नवग्रहों में इसी प्रकार उत्पन्न हुई।

पृथ्वी की उत्पत्तिः (Origin of the earth)

जब पृथ्वी का गोलाभ, सूर्य से गिर पड़ा तब वह अत्यंत तप्त और वातीय अवस्था में था। सूर्य की चारों ओर, और अपने ही अक्ष पर परिभ्रमण करने के कारण यह गोलाभ पुंज ठंडा और संघनित होने लगा। धीरे धीरे

अनेक युगों के पश्चात् वातीय स्थिति से पृथ्वी तरीलत (Liquid) हुई। उत्तरवर्ती समय में पृथ्वी का ऊपरी स्तर सूखकर गेस (Gas) होने लगा। आपने जमशेदपुर के भट्टियों में अयस्क-शोधन (Smelting of iron ore) देखा है? उसी प्रकार पर कहीं बड़ी मात्रा में पृथ्वी का स्थरल शोधन हुआ। अयस्क शोधन का क्या विधान (method) है? पहले पहल कच्चा लोहा, कोक (Coke) और चूना पत्थर (limestone) भट्टी (Furnace) में चढ़ा दिये जाते हैं, फिर उसमें हवा भरा जाता है। पहले कोक और आक्सीजन (Oxygen) के मिलने से कार्बन मौनाक्सैड (Carbon monoxide) की उत्पत्ति होती है। फिर यह वाति (Gas) कच्चे लोहे के साथ मिलकर कार्बन-डाई-आक्सैड (Carbon-di-oxide) में बदलती है। इस विधायन के परिणाम से लोहे की शुद्धि होती है और उसकी अशुद्धियाँ, चूना और सैकज़ा (Silica) जिन्हें धातुमल (Slag) कहते हैं इसके तरल पर प्लवित (float) होने लगती है, और भारी लोहा नीचे डूब जाता है।

इसी प्रकार जब पृथ्वी का सान्द्रतल (Solid Surface) बनने लगा, तब उसमें से अनेक वाति (gases) जैसे अक्सीजन (Oxygen) और हैड्रोजन (Hydrogen) इत्यादि मिलकर भाप (Steam) में परिणत हुए। इसके साथ साथ पृथ्वी का भारी खनिज जैसे लोहा, रूपक (nickel) आदि पृथ्वी के गोलाभ केन्द्र (Centre of the earth) में धँस गये। ऊपरी स्थरल पर हलके द्रव्य या धातुमल उठकर प्लवित हुए और ठंडे होने पर ठोस होते गये। इस स्तर में हलके द्रव्य जैसे सैकजा (Silica) सोडियम (Sodium) पोटेसियम (Potassium) मेगनीसियम (Magnesium) और अन्य वातियाँ मिली थीं। इस स्तर के पत्थरों को उम्ल-चट्टान (Acid rocks) का नाम दिया गया है। इसके नीचे का स्थरल अधिक भारी था, जिसमें खनिज पदार्थों की मात्रा अधिक और सैकजा की मात्रा कम थी। वैज्ञानिकों के अनुसार

पृथ्वी के आन्तरिक केन्द्र (Central core) अयस् और रूपक का बना हुआ है।

वैज्ञानिकों की राय में यद्यपि पृथ्वी का केन्द्र अत्यँत गरम है, फिर भी उसके खनिज पदार्थ तरीलत नहीं होते क्योंकि उन पर सारे पृथ्वी का भार टिका हुआ है। पृथ्वी संघनित (Condensed) होने के कारण भूमि स्तर (Land surface) समतल नहीं बल्कि ऊँचा नीचा हो गया। पृथ्वी के ठंडे होने से जो वाति भाप में बदल गई थीं वे फिर जल में परिणत हुईं, और संकुचित भूमि के अवसन्न क्षेत्रों (Repressions) में भर भर कर बैठने लगीं। इन महान जल विस्तृतियों (Expanse of water) को वैज्ञानिक भाषा में (Scientific Language) वारिमण्डल (Hydrosphere) कहते हैं। इन वातियों में आक्सीजन (Oxygen), और नैट्रोजन (Nitrogen) दोनों मिलकर हमारा वायुमण्डल (Atmosphere) बना। बचे हुए वाति जैसे क्लोरीन (Chlorine) इत्यादि पृथ्वी के स्तर पर क्रिया करके अनेक प्रकार के लावणों (Salts) (जैसे जिपसम (Gypsum) सादा नमक (Sodium Chloride) इत्यादि) में परिणत हुए।

पृथ्वी के अन्दरुनी स्थरलों में कहीं कहीं पर खनिज और कहीं पर तरलित द्रव्य (Liquid Matter) पाये गये हैं जो ज्वालामुखीय उद्भेदनों (Volcanic eruptions) में बाहर फूट पड़ते हैं।

अगले अध्याय में हम पृथ्वी की आयु के विषय में सुनेंगे।

पृथ्वी अध्याय ५

पृथ्वी की आयु

पृथ्वी की उत्पत्ति की कथा सुनने के पश्चात आप पूछेंगे कि उसकी आयु क्या है? प्राचीन काल से दार्शनिक, ज्योतिषक भूवैज्ञानिक इत्यादि, इस प्रश्न को पूछ चुके हैं, और अपनी धारणाओं के अनुसार इन्होंने विभिन्न उत्तर दिये। भूवैज्ञानिकों ने इस प्रश्न का उत्तर कैसे दिया? संक्षेप में वह इस प्रकार हैं :—

बहुत वर्षों से भूवैज्ञानिकों ने समुद्र, झील और नदियों में पाये हुए अवसादन—जैसे रेत, साद, मिट्टी-इत्यादि के संचित होने की गति (Rate of deposition) का अध्ययन किया। इन्होंने हर साल में अवसादित तहों के मुटापे को नाप कर देखा और साथ साथ प्राचीन काल से जमें हुए निक्षेप की पूर्ण स्थूलता को भी नापा। उससे गणना करके सर ए. के. गीकी (Sir. A. K. Geikie) ने प्रस्तुत किया कि भूमि की अवस्था लगभग १० करोड़ वर्षों की है। किन्तु अन्य वैज्ञानिकों ने इस अंक को बहुत कम समझा। साथ में यह भी सच है कि इस विधान से हमें ठीक उत्तर नहीं मिल सकता है क्यों कि संचित निक्षेप कभी पूर्ण रूप में नहीं मिलता है और संभव है कि कई वर्षों के अवसादित स्थरल टूट-फूट गये हों।

भू-आयु पर दूसरा विचार प्रसिद्ध भौतिकीविज्ञ लार्ड केल्विन (Lord Kelvin) ने पृथ्वी के शीतर्नाद्य (Rate of cooling) से अनुमान किया। उनके अनुसार पृथ्वी की आयु दो करोड़ वर्षों की है। वैज्ञानिकों की राय में इनका अंक भी उचित नहीं है क्योंकि इन्होंने अपने विचार में हिम-अनुयुगों की गणना नहीं की, और न तेजोद्गिर खनिजों की, जो कि लगातार पृथ्वी में ताप उत्पन्न करती आई हैं। इनकी गणना में विशेष

बात यह है कि आधुनिक वैज्ञानिकों ने जो अंक निश्चित किया है उससे वह सौ गुना कम है।

कुछ वैज्ञानिकों ने पृथ्वी की आयु समुद्र में पाये हुए लवण की मात्रा से निश्चय करने की कोशिश की है। इस रीति में उन्होंने निर्धारित किया कि समुद्र में पाया हुआ समस्त लवण निक्षेप (Salt deposits) नदियों द्वारा ही भूमि से बहा दिया गया है। यह अगणित किया गया है कि लवण का तत्व पदार्थ सोडियम (Sodium) १५८० लाख टनों के हिसाब से संसार के सागरों में हर वर्ष आ गिरता है। अध्ययन से पता चलता है कि कुल समुद्री निक्षेप १६०००,०००,०००,००० टन हैं। इस गणना से अनुमान किया जाता है कि भू-आयुस १०१,२६५,००० वर्ष हैं, किन्तु वैज्ञानिक इस अंक को बहुत कम समझते हैं। सोलस (Solas) नामक भूवैज्ञानिक के अनुसार समुद्र को आज की लवणता पर पहुँचने के लिये ५००,०००,००० वर्षों की ज़रूरत है।

इन विभिन्न विचारों से पता चलता है कि जिस प्रकार पृथ्वी की उत्पत्ति के विषय में वैज्ञानिकों में एक मत नहीं है, उसी प्रकार भू-आयुस में भी एकमत नहीं है। परन्तु आधुनिक वैज्ञानिकों की सहायता के लिए रेडियम (Radium) नामक तत्व (Element) मिला है जिसके द्वारा चट्टान, पत्थरों की आयु का पता चलता है और परोक्ष गणना (Indirect calculation) से पृथ्वी की आयु का निर्णय भी किया जाता है।

भू-आयु की गणना की रीति से पहले इस विचित्र तत्व के विषय में कुछ समझना चाहिए। १८९५ में प्रसिद्ध भौतिकीविज्ञ रोंन्टजन (Roentgen) ने देखा कि जब एक विद्युद्वाह एक तरह के वाति (Gas) से भरे हुए नाल में दौड़ाया जाता है तब उसमें एक प्रकार का अदृश्य किरण एक सिरे से दूसरे सिरे तक दौड़ता है। फिर उसने देखा कि जब यह किरण

भा-पट्ट (Photographic plate) पर डाला गया तब उसकी क्रिया सूर्य प्रकाश (Sun light) के सदृश था। इससे अधिक न मालूम होने के कारण उसने इस किरण का नाम एक्स-रे (x-ray) रखा। आपको शीघ्र ही पता चलेगा कि एक्स-रे और भू-आयुस में क्या संबंध है।

रोंन्टजन के बाद बेकेरल (Becquerel) और फिर प्रोफ़ेसर और मैडम क्यूरी (Professor and Madame Curie) ने पिचब्लेन्ड (Pitchblende) नामक गाढ़े रंग के खनिज में ऐसा ही एक किरण पाया जिसकी क्रिया भी भा-पट्ट (Photographic plate) पर एक्स-रे के समान थी। उन्होंने उसका नाम "रेडियम" याने "तेजातु" रखा, और उसकी क्रिया को "तेजोद्गिर" (Radio-active) कहा।

इनके पश्चात् रदरफोर्ड (Rutherford) नामक प्रसिद्ध भौतिकीविज्ञ के अनुसार यह रश्मि तीन प्रकार की थी जिसे उसने आल्फ़ा, बीटा, गामा नाम दिया। उसने पता चलाया कि गामा किरण और एक्स रे एक हैं।

इसके साथ साथ आधुनिक वैज्ञानिकों ने एक और आविष्कार किया कि किसी भी द्रव्य का सब से छोटा अंश एटम या परमाणु (atom) नहीं है जैसे कि तब तक समझा गया था। उन्होंने बताया कि परमाणु को भी उसके तत्वों में विभाजित कर सकते हैं, जिन्हें "प्रोटोन" और "एलकट्रोन" कहते हैं। विभिन्न द्रव्यों के परमाणुओं में विभिन्न मात्रा में ये दो तत्व मिले रहते हैं। हर एक परमाणु में प्रोटोन (Proton) रुपक न्यष्टि (nucleus) की चारों तरफ़ एलकट्रोन (electron) चक्कर काटते रहते हैं।

यहाँ हमें युरेनियम (Uranium) नामक खनिज (जिससे एटम बम Atom bomb बनाया जाता है) के विषय में कुछ जानना चाहिये। युरेनियम अपने में से तेजोद्गिर रश्मि (Radio active rays) फेंकती रहती हैं, और समय समय पर विभिन्न द्रव्यों में परिवर्तित होती हैं। इन

परिवर्तनों में वह कभी कभी रेडियम में भी बदल जाती है। इस तरह जब उसकी तेजोद्गिरता का अंत होता है तब वह सीसे (Lead) में परिणत हो जाती है।

इस प्रकार जब युरेनियम में परिवर्तन होता है तब उसका एक भाग मूल रूप में रहता है और एक भाग नये द्रव्य में बदल जाता है। इस परिवर्तन की गति इस प्रकार है:— १० लाख ग्राम (रेडियम) एक वर्ष में १/७६०० ग्राम सीसे में बदल जाता है। वैज्ञानिकों के अनुसार हर एक चट्टान या पत्थर में तेजोद्गिर तत्व कुछ मात्रा में उपस्थित रहता है। यदि हम एक चट्टान में बचे हुए रेडियम और सीसे को नाप सकें तो उस चट्टान की आयु की गणना आसानी से कर सकते हैं। यदि हम सब से प्राचीन चट्टानों की आयु की गणना रेडियम और सीसे की समता से कर सकें तो हमें पृथ्वी की आयु का भी पता चल जायेगा।

इस प्रकार गणना करने से वैज्ञानिकों ने ठीक तरह से निर्णय किया है कि पृथ्वी की आयु २७३०९ लाख (२७३ करोड़) वर्ष की है। इस अंक को सामने रखते हुए हम भारत के भौमिकीय इतिहास का प्रारंभ करते हैं।

अध्याय ६

आदि कल्प

(Archaean age)

इस संसार के इतिहास के प्रारंभ काल के दो सौ बीस करोड़ (220 Crores) वर्षों को हम अंधकार युग (dark age) कहते हैं, क्योंकि इस समय के कोई भी अभिलेख हमें नहीं मिलते। इस अवधि को आदि कल्प या आरकियन् एन का नाम दिया गया है।

भारत के मैसूर प्रदेश में इस काल के चट्टान-पत्थर धारवार में मिलते हैं जिससे इस काल के अधिकांश भाग को धारवार युग भी कह सकते हैं। इन अभिलेखों के अध्ययन से हमें ज्ञात होता है कि अति प्राचीन काल में भारत आज के समान एशिया का एक प्रायः द्वीप (Peninsula) नहीं बल्कि पृथ्वी की दक्षिणी दिशा में स्थित भूमि के महान क्षेत्र का एक टुकड़ा ही था। आज उस प्राचीन महाद्वीप (Continent) के भौगोलिक स्थिति के विषय में हम कुछ नहीं जानते। परन्तु भूवैज्ञानिकों के अध्ययन से पता चलता है कि पृथ्वी के अन्दर के ताप के दबाव (heated Pressure) से इस भूमि पर अनेक अवसन्न रेखायें खिंच गईं। एक ऐसा अवसन्न वर्ग (depressions) भारत के दक्षिण में धारवार से सेलम जिले तक था, और ऐसे अनेक क्षेत्र राजस्थान के आरावली पहाड़ियों में और मध्य प्रदेश के छिंदवारा–भंड़ारा—बालघाट जिलाओं में भी स्थित था। ये अवसन्न वर्ग, पृथ्वी के अन्दरुनी दबाव से भूमि का ऊपरी स्तर संकुचित हो जाने के कारण बनते थे। संभव है कि ऐसे वर्ग स्वच्छ या खारे पानी से भरे हुए थे जिसके परिणाम से ये देशान्तर समुद्र (inland seas) बड़ी बड़ी झीलों के रूप में परिणत हो गये। इन झीलों और समुद्रों में आस पास की नदियाँ आकर मिल जाती थीं। नदियों के साथ साथ भूमि से अनेक प्रकार के अवसाद—बालू, पत्थर, गोलाश्म इत्यादि बह आतीं और इन अवसन्न क्षेत्रों में दब जाती थीं।

हमें आज इन प्राचीन परिस्थितियों की कल्पना करना भी कठिन है। आँखें बंद कर पाँच मिनट तक ध्यान कीजिये और अपने मन में उस समय का चित्र खींचिए। आप देखेंगे कि पृथ्वी के अवसन्न केन्द्रों में पानी ही पानी भर गया है। भीषण वर्षा और बाढ़ आने लगता है। हज़ारों वर्ष बीतते हैं पर पृथ्वी पर कोई परिवर्तन नहीं—और न प्रकृति की निस्तब्धता को कोई जीवित प्राणी का चीत्कार ही भंग करता है। परन्तु

एकाएक एक भूकंप कहीं पर उठता है और शान्ति अपने आप भंग हो जाती है। पृथ्वी के अन्दर भीषण आन्दोलन मचते हैं और भूतल के अवसन्न केन्द्र उत्थित (lifted) होते हैं और जहाँ झील था वहाँ पहाड़ियाँ उठ पड़तीं हैं। ये पहाड़ियाँ सहस्रों वर्षों तक सूर्य की ताप को ग्रहण करती जातीं और हर एक वर्षा ऋतु में अपने से कुछ अवसाद नदियों और झीलों को देती जातीं हैं और समय बीतने के साथ फिर अवसन्न हो जातीं हैं।

इस प्रकार युगों के बीतने के साथ साथ भूमि में भी उत्थान और अवसन्न दोनों की रेखायें खिचतीं जाती हैं। अन्त में एक ऐसा भूकम्प आया होगा जिसके परिणाम से नदी और झीलों के अन्तर्गत जमी हुई समस्त अवसादन भीतरी दबाव से उठकर पहाड़ी शृंखलाओं में बदल गई। राजस्थान की अरावली शृंखला इसी प्रकार बनी। उस समय इसकी ऊँचाई (altitude) बहुत अधिक थी और यह शृंखला सदा हिम से ढ़की रहती थी। इसी प्रकार बिहार, उडीसा, मध्य प्रदेश आदि प्रान्तों में भी पहाड़ियाँ उत्पन्न हुईं, और सारे देश में धारवार युग में पर्वत शृंखलायें विस्तृत हो गई।

प्रकृति की देन:

परन्तु समय बीतने के साथ इस अखंड पर्वत माला में भी परिवर्तन होने लगा। कड़ी धूप और तेज़ आँधियों से टक्कर खा-खाकर ये भी दबने लगीं और अपनी पुरानी शान और सौंदर्य को खोने लगी। आजकल हमें इन महान पर्वतों के अंश राजस्थान, उत्कल और दक्षिण भारत में कुछ उजड़े हुए चट्टान पत्थरों में ही मिलते हैं। इन्हें देखने से हमें विस्मय होता है कि प्रकृति का खेल कितना विचित्र है—करोड़ों वर्षों में वह समुद्रों के ऊँचे ऊँचे पहाड़ बनाती है, और फिर अपनी ही कारीगरी से खिसियाकर उस पर वर्षा, और आंधी और धूप बहाती है और अचानक

उसका नाश कर देती है। प्रकृति में रचना और विनाश, दोनों क्रियायें साथ-साथ चलतीं हैं।

धारवारी खनिज :

पहले कहा जा चुका है कि इन पहाड़ियों से बहकर अनेक प्रकार की सामग्री नदियों में अवसादित (deposits) होती थीं। फिर जब किसी भूकम्प में नदियों के अवसन्न क्षेत्रों के तह उत्थित होते थे (river beds) तब उनके बीच वही निक्षेप दबे हुए रह गए। यही अवसादित संचिति आज हमारे देश की खनिज सम्पत्ति है जिस पर भारत की आर्थिक स्थिति बड़े पैमाने में निर्भर है। अब हमें धारवार युग के खनिजों के विषय में कुछ जानना चाहिए।

कच्चा लोहा (Iron Ore.) :

इस खनिज सम्पत्ति में सब से प्रमुख स्थान कच्चे लोहे (Iron Ore) का है क्योंकि इस दुनियाँ में हर एक देश का औध्योगिक विकास (Industrial Growth) इसी पर निर्धारित है। हमें गर्व है कि संसार में सबसे विस्तीर्ण आरक्ष (extensive reserves) हमारे देश में ही है। अनुमान किया जाता है कि भारत में करीब ३ हज़ार करोड़ टन से ज्यादा कच्चा लोहा निक्षेपित है। यह खनिज अधिकाँश मात्रा में बिहार, उड़ीसा, मध्य प्रदेश और मैसूर स्टेट में पाया गया है। हम प्रति वर्ष जपान और पूर्वी यूरोप को भी इसका निर्यात (export) करते हैं। आपको पता है कि देश में कच्चे लोहे का शोधन करने के लिए बड़े बड़े कारखाने टाटानगर, बर्नपुर, रौरकेला, भिलाई और दुर्गापुर में बसाये गयें हैं। हमारा ध्येय है कि तीसरी पचं वर्षीय योजना (third five year plan) के पश्चात और अनेक ऐसे कारखाने स्थापित किये जायँ जिनमें से 100 लाख टन इस्तपात (100 Lakh tons Steel) का उत्पादन हो सकें। इसी इस्तपात के

बल पर, इस देश में लोकोमोटिव सुमद्री और हवाई जहाज, और विभिन्न प्रकार के एन्जिनों की तैय्यारी की जा सकती है।

मेंगनीज़ (Manganese) :

इस्तपात के साथ मेंगनीज़ को मिश्रित (Alloy) करने से वह अत्यंत कड़ा और मज़बूत हो जाता है जिससे लोकोमोटिव, बन्दूक, (Rifles) गाडियों के पहिये (tyres) और अनेक आधुनिक यंत्रों के बनाने में यह खनिज मूल्यवान समझा जाता है। मेंगनीज़-डै-आक्सैड (Manganese-di-oxide) हमारे रोज़ाने उपयोग के यंत्र जैसे रेडियो, बेटरी, टोर्च इत्यादि के उत्पादन में आवश्यक है। मेंगनीज़-सल्फेट (Manganese sulphate) खेती में खाद और उर्वरक (Fertilizers) के बनाने में काम आता है। मेंगनीज़ (Manganese salts) छापने (Printing) और भा-चित्र (Photography) में उपयोगित है। भारत से हर वर्ष करीब 12 लाख टन से ज़्यादा मेंगनीज़, युनैटेड स्टेट्स, जपान और यूरोप, को निर्यात किया जाता है। इसका कुल आरक्ष भारत में 12 करोड़ टनों का है।

सोना :

कभी कभी धारवार युग के पहाड़ियों में सोना पाया जाता है जैसे मैसूर प्रदेश के कोलार खानों (Kolar mines) में। लाखों वर्ष पूर्व धरती के किसी भूकम्प के द्वारा यह खनिज भूगर्भ से, इन पत्थरों में आकर टिक गई। सोना, कोलार स्वर्ण-क्षेत्र के सिवा हट्टी और अनंतपुर (आँध्र प्रदेश) वैनाड़ (मद्रास) और छोटा नागपुर (बिहार) में पाया गया है। इधर, याद आता है कि कोलार के चेम्पियन (Champion reefs) खानों में धरती के भीतर दो मील की दूरी से सोना निकाला जाता है। अब तक लगभग 200 करोड़ रुपये अंकित मूल्य पर सोना इन खानों में पाया गया है। लोक धारणा है कि इन में अभी बहुत सोना नहीं बचा है।

क्रोमैटः (Chromite) :

क्रोमैट एक आधुनिक द्रव्य है जिसके विषय में पिछली शताब्दी के लोग कुछ नहीं जानते थे। क्रोमैट से ही क्रोमियम नामक धातु और क्रोमियम साल्टस् (Chromium salts) की तैयारी की जाती है। भारत में सिंहभूम जिले, मध्यप्रदेश में भडाँरा और आँध्र में बेज़वाड़ा और मैसूर प्रदेश में भी क्रोमैट पाया जाता है। यंत्रों के सँरक्षण रोध (Corrosion resistance) और जर न लगने (Anti-rust Properties) के लिए यह खनिज बहुमूल्य है। इस्तपात शोधन की भट्टियों (Blast furneces) में क्रोम ईटों का प्रयोग अति आवश्यक है। ज़ँग न लगने वाली स्टेन लेस-स्टील (Stainless steel) का नाम आपने सुना ही होगा। स्टेन-लेस-स्टील के बर्तन अब सारे देश में आम प्रयोग में आ गये हैं। इनके अलावा अनेक विशेष प्रकार के स्टीलों (Special steels) के निर्माण में क्रोमैट की ज़रुरत है। वर्ण-चर्म (Chrome leather) की तैयारी में क्रोमैट से उत्पादित केमिकलों (Chemicals) का प्रयोग किया जाता है। प्रति वर्ष- भारत में 1 लाख टन क्रोमैट प्राप्त होता है जिसमें से 20 हज़ार टन निर्यात किया जाता है। वाणिज्य अभिवृद्धि के साथ इस पदार्थ का मूल्य दिन पर दिन अधिक होता जाता है।

ताँबा (Copper) :

ताँबा भी एक खनिज है जो धारवार युग के पत्थरों में प्राप्त होता है। बहुत प्राचीन काल से ताँबा मनुष्य के उपयोग में आया है। भारत में ताँबे के बर्तन प्राचीन समय से लोकप्रिय हैं। आधुनिक काल में डैनमो (Dynamo), मोटर (Motor) और टेलिग्राफ (Telegraph), और अन्य बिजली की योजनाओं में लाखों मील लम्बी ताँबे की तारों की ज़रूरत होती है। भारत में ताँबा बहुत कम पाया गया है। केवल चार लाख टन कच्चा ताँबा प्रति वर्ष बिहार में निकाला जाता है।

सीसा और ज़िंक (Lead and Zinc) :

यद्यपि ये खनिज बिहार मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र आदि प्रान्तों में थोड़ी बहुत पाई गई है, फिर भी अधिकाँश मात्रा में ये राजस्थान में उदयपुर के पास ज़वार में प्राप्त होती है। अनुमान किया जाता है कि ज़वार में कच्चे ज़िंक और सीसे का 80 लाख टनों का विस्तीर्ण आरक्ष पृथ्वी में अब भी है।

युरेनियम (Uranium) :

युरेनियम 'पिचब्लेन्ड' (Pitchblende) नामक खनिज से उत्पन्न किया जाता है। पिचब्लेन्ड बहुत खोज करने के बाद बिहार में थोड़ी मात्रा में पाया गया है। यह धातु आज की दुनियाँ में अमूल्य है क्योंकि इसी से एटोमिक शक्ति (Atomic power) का विकास व एटम-बम (Atom bombs) बनाया जाता है। एटोमिक शक्ति का उचित प्रयोग करने से मनुष्य के लिए कुछ भी असंभव नहीं है :—अर्थात बिजली के उत्पादन (Production of electricity), रोगों का विनाश (Destruction of disease), और कृषि समृद्धि (agricultural Prosperity) के लिए इसका प्रयोग बहुमूल्य है। हालाँकि पिचब्लेन्ड भारत में बहुत कम मिला है फिर भी मोनाज़ैट (Monazite) जिसका तत्व (element) थोरियम (Thorium) है अधिक परिमाण में केरला स्टेट के रेतीले बालु तट में पाया गया है। थोरियम भी युरेनियम के सदृश तेजोद्दिर (Radio-active) है और एटोमिक शक्ति का इससे भी उत्पादन किया जा सकता है।

अभ्रक (Mica) :

इन सब खनिजों के सिवा, अभ्रक भी धारवारी पत्थरों में पाया जाता है। अभ्रक चट्टानों के बीच काँच (glass) की तरह चमकते हुए पतले पतले चादरों में बिछा हुआ मिलता है। आँध्र प्रदेश के नेल्लूर, बिहार में हज़ारीबाग़ आदि स्थानों में अभ्रक ज़मीन में चमकता हुआ नज़र

आता है। अभ्रक के खान राजस्थान और आँध्र प्रदेश में स्थित हैं। इसके उत्खनन में प्राचीन काल से भारतीय मज़दूर कुशलवान हैं। अभ्रक की विशेषता यह है कि न तो आँग या कोई एसिड (acid) का इस पर प्रभाव पड़ता है, और न तो बिजली ही इसमें दौड़ सकती है। इस कारण विद्युत संबंधी योजनाओं में इसका उपयोग अमूल्य है। हवाई जहाज़ और एन्जिनों के बनाने में यह एक आवश्यक पदार्थ है। भारत में दुनियाँ भर में सब से अधिक अभ्रक का उत्पादन होता है। हर साल 10 करोड़ रुपये के मूल्य पर अभ्रक विदेश भेजा जाता है।

एसबेसटोस (Asbestos) :

इस खनिज पर भी, आँग या किसी एसिड का कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। अग्नि शामक दल (Fire brigade) की रस्सियों में यह प्रयुक्त होता है। भट्टियों और लबोरोटोरियों (Laboratories) में भी यह काम आता है। एसबेस्टोस को सिमेन्ट से मिलाकर हलके छत के चादरों (Light weight roofing sheets) के बनाने में उपयोग किया जाता है। बिहार, राजस्थान, और मैसूर प्रदेश में यह खनिज प्राप्त होता है। हर वर्ष भारत में एक हज़ार टन एसबेसटोस का उत्खनन किया जाता है।

संगमरमर और चूना पत्थर (Marble & Limestone) :

इसी धारवार युग में भारत का प्रसिद्ध संगमरमर राजस्थान के खारवा (Kharwa) और मक्राना आदि स्थानों में उत्पन्न हुआ। इसी से दिलवारा के मंदिर और ताजमहल जैसा सुन्दर इमारत भारत में पिछले कालों में रचे गये।

चूना पत्थर (Limestone) :

साधारण चूने की तैय्यारी धारवारी चूना-पत्थर से ही किया जाता है। प्राचीन काल से चूना पान सुपाड़ी के साथ खाने में और संमृद् (mortar) के रूप प्रयोग किया गया है। आधुनिक काल में चूना, सिमेंट उत्पादन,

चीनी (Sugar), कागज़ (paper) के बनाने, सोड़ा एश (Soda ash) ब्लीचिंग पउडर (Bleaching powder) केलसियम कार्बैड (Calcium Carbide) इत्यादि की तैय्यारी में अति आवश्यक है। चूना, पानी की शुद्धि और चमडे की सफ़ाई में भी काम आता है।

मैंगनीसैट (Magnesite) :

आखिर में मैंगनीसैट नामक मुख्य खनिज के विषय में जानना चाहिए। मैंगनीसैट की पहाड़ियाँ मद्रास के सेलम ज़िले में चमकते संगमरमर की तरह मीलों तक फैले हुए नज़र आते हैं। मद्रास के सिवा अल्मोरा में भी यह खनिज थोड़ी बहुत मात्रा में पाई गई है। इसका खनन चूने की तरह किया जाता है और अनेक पदार्थों में इसका प्रयोग किया जाता है। धरती से कच्चा मैंगनीसैट निकालकर चूने की तरह जलाया जाता है। आधे जले हुए मैंगनीसैट सोरेल सिमेंट (Sorel cement) के बनाने में प्रयोग किया जाता है, जो कि फर्श खर्परी (Flooring tiles) बनाने में आवश्यक है। इस पर ऑग और बिजली का कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। पूरे जले हुए मैंगनीसैट ईंटों (Fully burnt Magnesite bricks) को इस्तपात के कारखानों की भट्टियों के बनाने में प्रयोग किया जाता है। यद्यपि इस देश में भी यह खनिज आवश्यक है, फिर भी बड़े पैमाने में इसे निर्यात करते हैं।

अध्याय ७

कड़प्पा युग

कड़प्पा युग :

धारवार युग के पश्चात हम भारत के प्राचीन इतिहास में कड़प्पा युग की ओर बढ़ते हैं। जब धारवार युग की पहाड़ी श्रृंखलायें सूर्यतप

और आँधियों के वेग से दबने लगीं उसी समय भारत के अन्य प्रदेशों के अवसन्न वर्गों में देशान्तर समुद्र (inland seas) और बड़े बड़े झील बनते रहे। इन अवसन्न क्षेत्रों में मुख्य क्षेत्र दिल्ली, बिहार, हैदराबाद और आन्ध्र प्रदेश के करनूल और कड़प्पा जिलों में उत्पन्न हुए। फिर आसपास की नदियाँ इनमें भर गईं और अपने साथ गोलाश्म, लवण इत्यादि सामग्री लाकर इनके अन्तर्गत अवसादित करती गईं। भूकम्पों के साथ साथ इस काल में ज्वालामुखीय उद्भेदन (Volcanic eruptions) भी होता रहता था और इनमें पिघला हुआ द्रुत चट्टान (molten rocks) इन झीलों के अन्दर बह आता था।

इन ज्वालामुखीय उद्भेदनों के चिन्ह मध्य प्रदेश के बिजावर और आन्ध्र प्रदेश के करनूल नगरों में दिखाई पड़ते हैं। इस समय के सब अवसादन जो नदियों और झीलों के फर्श में निक्षेपित थे, भूकम्प द्वारा उच्छादित होकर पहाड़ियों और पर्वतों में परिवर्तित हो जाते थे। ये पहाड़ियाँ कड़प्पा, करनूल, अनंतपुर, दिल्ली आदि प्रदेशों में उत्थित हुईं। इस समय लगभग चार महान भूकम्प हुए जिनमें नदियों के अवसन्न क्षेत्र उत्थित हुए। इन भूकम्पों में पृथ्वी से इतना अधिक दबाव पड़ता था कि चूर्ण साद, चूना पत्थर और बालु बलुआ पत्थर (sandstone) में परिवर्तित हो जाता था।

प्रकृति की देन :

कड़प्पा युग के खनिज धारवार युग के समान अधिक मात्रा में नहीं प्राप्त होते। पर इस युग के चूर्ण निक्षेप आज सिमेन्ट (cement) के उत्पादन में काम आता है। कड़प्पा युग के चूर्ण शिला (lime slabs) आधुनिक मकानों के फर्श और खर्परी (tiles) के बनाने में युक्त होता है। फिर खेल खड़ी (soapstones) जो कि बिजली के यन्त्रों में प्रयुक्त होता है, इस समय के चट्टानों में पाया जाता है। सीसे का निक्षेप (Lead deposits)

भी कड़प्पा जिलों में कुछ मात्रा में पाया गया है। ऐसबेसटोस भी इन चट्टानों में प्राप्त होता है। बरैटीस (Barytes) जो कि एक बेरियम सल्फेट (Barium sulphate) का खनिज है, आन्ध्र प्रदेश के कड़प्पा जिले में और राजस्थान के अल्वर प्रान्त में अधिक मात्रा में पाया जाता है। यह खनिज भारी और श्वेत रंग का है और अनेक लवणों के उत्पादन, तेल की व्यधन (drilling) और काँच के उद्योग में उपयोग किया जाता है।

इस समय की ज्वालामुखियों द्वारा उद्भेदित द्रुत चट्टानों में हीरे भी पाये गये हैं, और इस काल का बलुआ-पत्थर राजस्थान के झिंड प्रान्तों में पाया जाता है।

अध्याय ८

विन्ध्य युग और पहले जीवित प्राणी

अन्धकार युग के अंतिम संकाल को भारत में विंध्य-युग कह सकते हैं। भूवैज्ञानिक इतिहास में हम इसे आर्य्य-युग (Aryan age) भी कहते हैं; क्योंकि इस युग के पहले के इतिहास का हमें इतना कम ज्ञान है जितना भारत के लिखित इतिहास में आर्य्यों के पूर्व युग का। इस समय कड़प्पा युग के पर्वत अपक्षीण होने लगीं जैसे पिछले काल में धारवार की पर्वत श्रृंखलायें सूर्य तप और वर्षा के कारण खंडित हो चुकी थीं।

इसके साथ भारत में अनेक महान अवसन्न गर्त उत्पन्न हुए जिनके अन्दर नदियों और वर्षा का पानी भरकर बड़ी बड़ी झीलें और देशान्तर समुद्र बनने लगे। ये पूर्वी राजस्थान, मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश और आन्ध्र प्रदेश में विस्तृत थीं। उत्तरवर्ती युगों में पृथ्वी के अन्तर्गत उथल पुथल मचने से इनकी पात्री रूपी घाटियाँ उत्थित होकर नर्मदा से गंगा की घाटी तक फैली हुई पर्वत माला में परिणित हुईं। इस काल के भूकम्प धारवार

युग के समान भीषण नहीं थे, परन्तु इनके दबाव से अवसन्न घाटियों में निक्षेपित रेत बालुकाश्म (Sandstone) में परिणत हुआ और साद चूर्ण-पत्थर (Limestone) में।

विन्ध्य पर्वतों के चट्टानों के अध्ययन से पता चलता है कि उस समय सब से पहले जीवित प्राणियों की उत्पत्ति के लिए अच्छी जलवायु थी। राजस्थान के चट्टानों में प्राचीन पौधों के अण्वीक्ष्य जीवाश्म (microscopic fossils) मिलते हैं। पर इससे अधिक जीवित प्राणियों के विषय में हम कुछ नहीं जानते।

प्रकृति की देन :

विन्ध्य पर्वतों के रोड़ीले बिस्तरों (Vindhyan Pebble beds) में हज़ारों वर्षों से हीरे मिलते आये हैं। इतिहास प्रसिद्ध "कोहेनूर", "ग्रेट पिट्ट" और "मोग़ल" इसी प्रकार प्राप्त हुए। आजकल उत्तर में पन्ना और साम्बलपुर और आँध्र प्रदेश के वज्रकरूर में भी हीरों का उत्खनन किया जाता है। पन्ना में हीरों के पाँच करोड़ टनों के चट्टान पाये जाते हैं जिनमें अनुमान है कि बीस करोड़ केरट (20 crore Carats) हीरे गढ़े हुए हैं।

इस युग के खनिजों में मुख्य एरन पैरटस् (Iron Pyrites) है जिस में से गंधक (Sulphur) का उत्पादन किया जा सकता है। एरन पैरैटस् देहरी-ओन-सोन के पास अमझोर नगर में प्राप्त होता है। चूना पत्थर भी विन्ध्य युग में उत्पन्न हुआ और आजकल राजस्थान, मध्य प्रदेश, और महाराष्ट्र के सिमेंट कारखानों में उपयोगित है।

पर इससे अधिक शानदार खनिज लाल बलुआ-पत्थर (Red sand stone) है जिससे आगरे, दिल्ली और फतहपुर-सीक्री के किले और महल पुराने ज़माने में बनाये गये थे।

अध्याय ९

पेलियोज़ोइक महायुग

(Palaeozoic age)

52 – 18 करोड वर्ष पूर्व अवधि

अंधकार युग के बारे में हमें अधिक ज्ञान नहीं है। हम, बस, इतना जानते हैं कि धारवार और कड़प्पा युग के भूकम्पों के परिणाम से आजकल की विन्ध्य पर्वत श्रृंखला और राजस्थानी पहाड़ियाँ पृथ्वी पर उठीं। अंधकार युग के पश्चात्, हमारे देश की भूवैज्ञानिक इतिहास का हमें कुछ अधिक मात्रा में अभिलेख प्राप्त हैं (Records) जिनके अध्ययन से हम इस काल को पुराकल्पीय (Palaeozoic) कह सकते हैं। ये ही अभिलेख भूवैज्ञानिकों के लिए प्रकृति की देन हैं जिनके द्वारा वे पचास करोड़ वर्ष पूर्व के इतिहास की संरचना (Construction) करते हैं।

पुराकल्पीय युग के प्रथम अंक के ८ करोड़ वर्षों को भूवैज्ञानिक इतिहास में केम्ब्रियन युग (Cambrian age) कहते हैं क्योंकि इस संकाल के अभिलेख पहले पहले ब्रिटन देश के केम्ब्रिया (आधुनिक वेल्स Modern Wales) में पाये गये। भारत के भूवैज्ञानिक इतिहास में इस अवधि को त्रिखंड या "हैमन्त" युग भी कहा गया है। इसका कारण आपको शीघ्र ही मालूम होगा।

इस प्राचीन काल में भारत की भौगोलिक स्थिति का हमें पूरा पूरा ज्ञान नहीं मिलता है। किन्तु लगभग पाँच करोड़ वर्ष पहले के पत्थरों के अध्ययन से पता चलता है कि उस समय आधुनिक पंजाब के उत्तर में (जहाँ अब हिमालय की श्रृंखला है) एक महान समुद्र था। इस समुद्र की एक शाखा काश्मीर से हुन्द्वारा तक व्याप्त था। यह प्राचीन समुद्र पश्चिम में आजकल की नमकीली साल्टरेंज पहाड़ियों से खेउड़ा तक और उत्तर से

दक्षिण की पहाड़ियों तक विस्तृत था। इस समुद्र का उत्तरी तट पाकिस्तान के उत्तर दक्षिण में स्थित था।

हमें भारत के पूर्व, पश्चिम और दक्षिण दिशाओं के भौगोलिक स्थिति का ज्ञान नहीं है। पिछले अध्यायों में कहा जा चुका है कि भारतवर्ष प्राचीन कालों में पृथ्वी के एक महान भू-वर्ग का एक टुकडा था। इसके अतिरिक्त हमें इस युग का अधिक भौगोलिक ज्ञान नहीं है। संभवतः राजस्थान की बड़ी बड़ी नदियाँ सागर में जा मिली हों। आज की साल्ट रेंज पहाड़ियों में यह समुद्र उथला (Shallow) ही था, परन्तु काश्मीर के बारामुला प्रदेश में उसकी गहराई बहुत अधिक थी। यह भी संभव है कि यह समुद्र पूर्व में बर्मा देश तक विस्तृत रहा हो। इसी समय बर्मा के बाद्वीन प्राँत (Bawdwin) में एक भारी भूकंप हुआ।

जीवित प्राणी :

यद्यपि त्रिखंड युग में जलवायु समशीतोष्ण (temperate) होने लगी थी, फिर भी हमें इस युग के भूमि पर रहनेवाले जीवों के कोई अभिलेख नहीं मिलते। संभव है इस समय आल्गे नामक त्रिणक जाति के पौधे रहें हों, परन्तु इनके बहुत कोमल और मुलायम होने के कारण, इस युग के चट्टानों में इनके कोई जीवाश्म नहीं मिलते।

आप्यक या आल्गे और कुछ पौधों के सिवा पृथ्वी पर कोई अंगीय जीव नहीं उत्पन्न हुआ था। किन्तु समुद्र में अनेक प्रजातियाँ उत्पन्न हो चुकीं थीं।

इनमें से कुछ प्रजातियों के मीन ये हैं :—

1. छत्र मुखी (Aperture-bearing jelly fish.)
2. क्रैनोइड (Crinoids) समुद्री फूल सध्रश मीन प्रजाति।
3. ग्रेप्टोलैट (Graptolites) याने आरे दार। मीन।
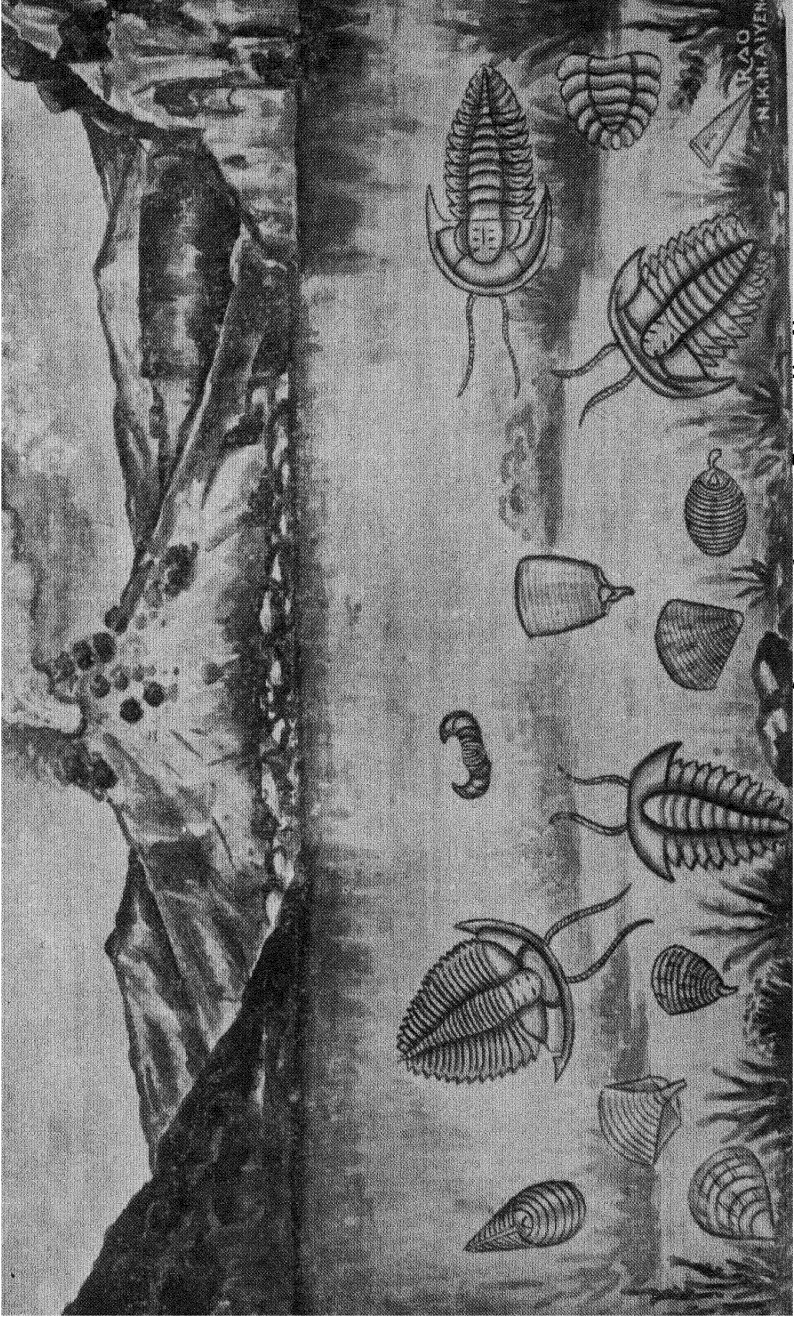
चित्र 2 : लगभग पचास करोड़ वर्ष पूर्व भारत के समुद्री जीव।

4. एकिनोडर्म (Echinoderm) इन्हें समुद्री सितारे भी कह सकते हैं।
5. गेस्ट्रोपोडस् (Gastropods) मंथर या घोंघे का पूर्वज।
6. यूरिप्टेरिडस् (Eurypterids) समुद्री बिच्छू।
7. ब्रेकियोपोड (Brachiopods) इसे 'बाहुपदा।' भी कह सकते हैं। (चित्र 2) देखिए।

इस सूची से पता चलता है कि जल में पृष्ठवशीं (Vertebrates) जीवों के सिवा, अन्य हर प्रकार के पशु प्रजातियों के समुद्री प्रतिनिधि उत्पन्न हो चुके थे। इनके जीवाश्म आज भी साल्टरेंज पर्वत, काश्मीर और हिमालय के मध्य में स्थित घाटी में बिछे हुए पाये जाते हैं। इनमें मुख्य ये हैं:—

ट्रैलोबैट (Trilobites) :

प्रचीन समुद्री जीवों में मुख्य प्रजाति ट्रैलोबैट थी (हमारे बिच्छू और महीचगंट का पूर्वज) जो कि समुद्र तल (Floor of the sea) में धँसी रहती थी। इस मीन को ट्रैलोबैट नाम इसलिए दिया गया, कि इसके तीन भाग थे—सिर का कवच, (Head shield) बदन और पूँछ। इसके शारीर (Anatomy) का मध्य विभाग एक लम्बे डंडे (Rod like) की तरह था जिसके दोनों तरफ चलने के लिए दो अंग बने हुए थे। इसके सिर में भी दो स्पर्श सूत्र (Antennae) लगे रहते थे। ट्रैलोबैट संसार में तीस करोड़ वर्षों तक था। परन्तु इस प्रजाति का एक दम विनाश हो गया और अब इस नाम का कोई प्राणी जीवित नहीं है।

ब्रेकियोपोड (Brachiopods) :

इसको "लेम्प शेल" (Lamp shell) भी कह सकते हैं क्योंकि इसके वंश की प्रजाति रोम के प्राचीन दियों की तरह थी। इसका कवच

हो विभिन्न आकार के शंखों का बना हुआ था। संसार के सागरों में 32 करोड़ वर्षों तक समृद्ध रहने के पश्चात यह प्रजाति अपक्षीण हो गई और आज इसके बहुत कम मीन जीवित हैं।

ह्योलैथ (**Hyolithes**) :

ह्योलैथ नामक और एक लुप्त प्रजाति थी जिसके वंश का कोई भी जीव अब नहीं पाया जाता है। इसके जीवाश्म ढाँचे साल्टरेंज और पश्चिमी पाकिस्तान में पाये जाते हैं। सिस्टिड्स (Cystids) नामक प्रजाति भी लुप्त हो गई जो कि समुद्री फूल की तरह थी और जिसके सिर पर एक रंध्र (Hole) बना हुआ था। इसके कवच के ऊपर छोटे छोटे पट्ट (Plates) बने थे। आज भी काश्मीर के हुन्द्वारा प्रदेश के चट्टानों में इसके जीवाश्म पाये जाते हैं।

भारत में हमें इस समय के कोइ अभिलेख नहीं मिलते, पर यह निश्चित है कि विविध प्रकार के समुद्री आल्गे (Marine Algae) इस समय में रहे होंगे। इनमें से कई अण्वीक्ष जीव (Microscopic bits) त्रिखंड या ट्रैलोबैट युग के साल्ट रेंज पहाड़ियों में पाये गये हैं। किन्तु अधिक विकसित फूल दार पौधे इस काल में नहीं उत्पन्न हुए।

प्रकृति की देन :

प्रकृति ने मनुष्य के उपयोग का क्या क्या खनिज इस काल में उत्पन्न किया ?। जब साल्टरेंज प्रदेश से खारे पानी की समुद्री शाखा हट गई तब उसके फर्श (Sea bed) पर प्रचुर मात्रा में नमक के निक्षेप (Sodium Chloride deposits) अवसादित रह गये। यह नमक लाल ओर श्वेत लवण-पत्थर (Rock salts) में बदल गया। यदि आप खेवड़ा के नमक के खानों में जाँय तो आप नमक के इतने पारदर्शी पत्थर देखेंगे कि पाँच फुट मोटी निमकीली दिवारों से साफ साफ दिखाई पड़ेगा।

जिपसम (Gypsum) इस युग की दूसरी खनिज है जिसका आर्थिक मूल्य (Economic value) बहुत है। इस खनिज के विस्तीर्ण आरक्ष साल्ट रेंज पहाड़ियों में पाये जाते हैं। जिपसम सलफ्यूरिक एसिड (Sulphuric acid) और अच्छे खाद (Fertilizers) के उत्पादन में आवश्यक है। सिमेन्ट व प्लास्टर-आफ-पेरिस के निर्माण में भी जिपसम उपयोगित है॥

पुराकल्पीय या पेलियोज़ोइक युग के द्वितीय काण्ड को ऑर्डोविचियन संकाल (Ordovician period) कहते हैं। यह आठ करोड़ वर्षों की अवधि है। इस काल में यूरोप और उत्तरी अम्रीका एक ही समुद्र से आच्छादित था। स्काटलेन्ड (Scotland) प्रदेश में इस काल में भारी उथल-पुथल मची जिसके परिणाम से उसकी पर्वत श्रंखलाएँ पहले पहल बनीं।

इस समय में भारत की भौगोलिक अवस्था का हमें पूरा ज्ञान नहीं है। पूर्वी और पूर्व-पश्चिमी समुद्र ज्यों के त्यों रहा पर साल्ट रेंज प्रदेश से समुद्री शाखा विलीन हो गई।

सारे संसार में इस समय समुद्री जीवों की संख्या बढ़ गई। "स्पोन्ज" (Sponge) और ब्लेडर शेल (Bladder shells) और ट्रैलोबैट (Trilobite) प्रजातियाँ बढ़ती गईं, विशेष कर ट्रैलोबैट प्रजाति के अनेक मीन अत्यन्त विशालाकार (Voluminous) हो गईं। यूरिप्टेरिड (Eurypterids) और पोलियोज़ोआनस् (Polyozoans) भी बढ़ती गईं नाटिलस (Nautilus) मीन के प्रथम पूर्वज भी इस काल में बसे थे।

इसी समय पहले पहल पृष्ठवँशीय मीन भी उत्पन्न हुए। इन्हें कवचदार मीन (Armoured fishes) भी कहते हैं क्योंकि इनके पीठ पर पट्टदार कवच सा बना हुआ था। पर इनमें जम्भ (Jaw) और नास-रंध्र (Nasal aperture) नहीं बने थे। इन्हीं समुद्री जीवों में कुछ कुछ अद्विकास

होता रहा। पृथ्वी पर कोई पशु पक्षी नहीं उत्पन्न हुए। समुद्री जीवों में समुद्री फूल (Crinoids) की संख्या बढ़ गई और आरेदार मीन (Graptolites) अपक्षीण (Decline) होती गई। नई पृष्ठ वंशीय मीन (back boned fish) उत्पन्न हुई जिनमें कई प्रजाति, ग्राह सदृश (Shark-like) थीं। इंगलेन्ड में जायमेटियस (Joymatius) नामक मीन का एक जीवाश्म मिला है, जो कि 30 करोड़ वर्ष पूर्व जीवित था। कुछ लोगों की राय में यह मीन, स्तनी-वर्गीय जीव (mammals) और मनुष्य, दोनों का पूर्वज था, पर वैज्ञानिक इस बात को नहीं मानते।

आस्ट्रेलिया (Australia) में इस काल का एक भू-वृक्ष (Land plant) मिलता है जो कि बिल्कुल साधारण शाखे दार पौधे (Simple, branched plant) की तरह है। इसका नाम बारगवानातिया (Baragwanathia) रखा गया।

अध्याय १०

उभयचरों का युग

(Dawn of the Amphibians)

३२-२६ करोड़ वर्ष पूर्व

सौल्यूरियन युग के अनुवृत्ति समय में 4½ करोड़ वर्षों (45 Million years) का संकाल है जिसे भूवैज्ञानिक इतिहास में डेवोनियन (Devonian age) युग कहा गया है क्योंकि इस काल के चट्टानों का अधययन पहले पहल इंगलैंड के डेवनशयर (Devonshire) प्रदेश में किया गया। भारत की भौगोलिक स्थिति में ख़ास अन्तर नहीं हुआ पर ऐसा प्रतीत होता है कि उत्तरी सागर गढ़वाल और बर्मा की ओर अधिक बढ़ने लगा।

जीवः (Life):

उत्तर पश्चिमी समुद्री जीवों के विषय में हमें अधिक ज्ञान नहीं है। इसमें मुख्य प्रजातियों का पहले ज़िक्र हो चुका है। निम्न श्रेणी (lower scale) के जीवों में, समुद्री फूल, (Sea-lilies) प्रवाल (Coral) द्वीप शंख (Lamp shells) आदि की संख्या बढ़ती गई और ट्रैलोबैट (Trilobite) नामक प्रजाति घटती गई। इस समय एमोनैट प्रजाति (Ammonite) की अभिवृद्धि हुई। उसका नाम एमोनैट इसलिये रखा गया कि इसकी शक्ल भेड़ों की सींग की तरह थी और प्राचीन मिस्र के देवता एम्मौन भेड़ों के सींग पहने हुए कल्पित हैं। एमोनैट (Ammonite) प्रजाति समुद्र के फर्श में रहती थी। इसका कवच (Shell) बहुत ही चिकना और मुलायम था, सिर की सुरक्षा के लिए उस पर एक छत्री सी लगी रहती थी। इसके अनेक लम्बी लम्बी बाहें थीं जिन्हें अंगक (Tentacles) कहते हैं।

पृष्ठ वंशी मीनों (Back-boned fishes) में अनेक बिना जम्भदार (Jawless) प्रजातियाँ उत्पन्न हुईं, और साथ-साथ हड्डीदार मीनों की संख्या भी बढ़ गई। फुप्फुस मीनों (Lung fishes) का भी धीरे-धीरे विकास होने लगा। मेढ़क (frog) प्रजाति का पूर्वज भी इसी काल में उत्पन्न हुआ।

पौधों में भी नई प्रजातियाँ उत्पन्न हुईं। इनमें मुख्य हॉस-टेल (Horse-tails) और क्लब-मोस (Club moss) हर जगह उत्पन्न हुईं। "सैलोफैटौन" (Psilophyton) नामक प्राचीन पौधे का अंत हो गया। दो नये प्रकार के पौधे इंगलैण्ड में पाये गये हैं जिनका नाम रैनिया (Rhynia) और होरनिया (Hornea) रखा गया है। इनकी टहनियों में बीज रहता था जिससे पता चलता है कि आज से ३० करोड़ वर्ष पूर्व बीजात्मक (Seed bearing) पौधे पृथ्वी में उत्पन्न हो गये।

अध्याय ११

कार्बोनिफेरस् युग

(Carboniferous age)

१६-२१ करोड़ वर्ष पूर्व

अब हम करोड़ों वर्षों के बाद भूवैज्ञाकि इतिहास का मुख्य अवधि-अंगार या कार्बोनिफेरस युग की ओर पहुँचते हैं, जिसमें पहले पहल मनुष्य का सर्वोपयोगी खनिज कोयला, पृथ्वी में उत्पन्न हुआ। इस पाँच करोड़ वर्षीय युग में पृथ्वी के भूस्तर पर अनेक परिवर्तन हुए। पहले कहा जा चुका है कि भारत के उत्तर में एक महान सागर था। यद्यपि इन युगों का हमें अधिक भौगोलिक ज्ञान नहीं, फिर भो ऐसा प्रतीत होता है कि अंगार युग के पहले पृथ्वी में एक बृहद् आन्दोलन मचा जिसके परिणाम से भू और जल तटों में एक प्रकार का समायोजन (Re-adjustment) हुआ।

टेथिस सागर (Tethys) :

इसी उथल पुथल में उत्तरी अम्रीका (North America) के पूर्वीय तट पर समुद्र ने आक्रमण किया। भारत के उत्तरीय समुद्र का भी विस्तार निश्चित हुआ। यह समुद्र पश्चिम में स्पेन देश, और पूर्व में चीन तक विस्तृत था। आजकल की दक्षिणी यूरोप, तुर्की, मध्य एश्या तिब्बत इत्यादि देश सब इस महासागर के गर्भ में सो रहे थे। इस प्राचीन सागर को भूवैज्ञानिकों ने टेथिस (Tethys) नाम दिया है। इस समुद्र की एक शाखा बर्मा और मलाया तक पहुँच चुकी थी। ऐसा प्रतीत होता है कि इस सागर ने उत्तरी और दीक्षणी एश्या को दो खँडों में विभाजित किया, यद्यपि दोनों के बीच भूमि की पतली रेखा खिंची हुई थी। टेथिस महासागर संसार के मानचित्र पर २५ करोड़ वर्षों तक विद्यमान था फिर काल चक्र के परिवर्तनों में लुप्त हो गया। (चित्र 3)

अनेक भूवैज्ञानिकों के अनुसार टेथिस के पश्चिम में एक महान भूअंक था जो आज के महाद्वीपों (Continents) से कहीं अधिक विशाल
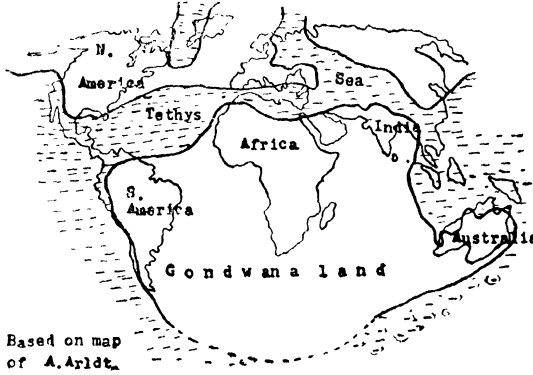
चित्र (3) गोंडवान महाद्वीप.

था। इस महाद्वीप को एडवर्ड सूयस (Edward Suess) नामक प्रमुख भूवैज्ञानिक ने गोंडवानभूमि (Gondwanaland) का नाम दिया है, क्योंकि उनके अनुसार भारत का गोंडवान प्रदेश इस महाद्वीप के उत्तर पश्चिम में स्थित था। सूयस के बाद प्रोफ़ेसर वेगेनर (Prof. Wegener) ने कहा कि उस काल के गोंडवान भूमि में आजकल के दक्षणी अम्रीका, आफ्रीका, आस्ट्रेलिया, अन्टारटिका, भारतवर्ष, और ईस्ट-इण्डियन गणद्वीप (East Indian Archipelago) इत्यादि देश सब मिले हुए थे। इस सम्बन्ध में प्रोफेसर वेगेनर कहते हैं कि दक्षिणी अम्रीका का पूर्वीय तट और दक्षिणी आफ्रीका का दक्षिणी तट यदि जोड़ दिये जायँ तो एक दूसरे के अन्दर अच्छी तरह मिल जायेंगे, और उन्होंने बताया कि इन दोनों क्षेत्रों का प्राचीन भूवैज्ञानिक इतिहास बिल्कुल एक सा है, जिससे वे अनुमान करते हैं कि ये दो महाद्वीप किसी प्राचीन काल में एक थे। वेगेनर की राय में यह प्राचीन महाद्वीप, समय बीतने के साथ टूट फूट कर तितर बितर हो गया—उसका एक टुकड़ा जिसे आज हम आस्ट्रेलिया के नाम से

जानते हैं दक्षिण पूर्व की ओर बह गया, दक्षिणी अफ्रीका पश्चिम की ओर, और उसके उत्तर पूर्व की ओर भारत। भारत ने इसी समय अपनी वर्तमान भौगोलिक स्थिति को ग्रहण किया और उसके उत्तरी तट में बंगाल की खाड़ी भी इसी काल में उत्पन्न हुई। वेगेनर के इस सिद्धान्त को सब भूवैज्ञानिक नहीं मानते।

भारत के भौगोलिक नक़शे में कुछ परिवर्तन हुए। पृथ्वी के उथल पुथल के कारण भूस्तर खिसक जाती थी और अनेक अवसन्न रेखाएं खिच जाती थीं। भारत में इस समय दामोदर, सोन महानदी इत्यादि के स्थानों में पात्री रुपी घाटियाँ उत्पन्न हुई। इसी समय समुद्र की एक शाखा मध्य भारत के बीचों बीच (आजकल की कटनी, महेन्द्रगढ़, उमारिया तक) आ पहुँची। इन प्रदेशों में आजकल अनेक प्रकार के समुद्री जीवाश्म (marine fossils) बिछे हुए दिखाई देते हैं। भारत के उत्तर में टेथिस सागर चित्राल और काश्मीर के लिदार प्रदेश तक फैल गयी। साल्टरेंज पर फिर से समुद्री शाखा ने आगमन किया।

लगभग पाँच करोड़ वर्षों के बाद काश्मीर प्रदेश में पृथ्वी में एक भयंकर हलचल मची, जिसके साथ बड़ी बड़ी ज्वालामुखीय उद्भेदन भी हुए। ज्वालामुखियों ने दूर दूर तक चट्टान और गोलाश्म फेंके, जो सखंड निक्षेप (Volcanic aggolomerate) के साथ इस प्रदेश के कोने कोने में पाये जाते हैं।

गोंडवान भूमि की जलवायु में परिवर्तन होता था। पहले आजकल की सैबीरिया की तरह ठंड पड़ती रही, और उत्कल, राजस्थान इत्यादि की पहाड़ियाँ वर्फ़ से ढक गई। इन बर्फ़ीली पहाड़ियों से हिमानियाँ (Glaciers) नीचे की घाटियों में उतर आती थीं और पूर्वीय साल्टरेंज पहाड़ियों (पाकिस्तान) का यदि आप अध्ययन करें तो इनमें ऐसे अनेक

गोलाश्मों को देखेंगे। ये गोलाश्म राजस्थान की मालनी पहाड़ियों से १०० मील की दूरी तक हिमानियों द्वारा बहाई गई। इसी तरह के अनेक गोलाश्म बंगाल और बिहार के कोयले के समूहों में भी पाये जाते हैं। अम्रीका, आफ्रीका आदि गोंडवान देशों में भी इसी प्रकार हिमानी द्वारा लाये हुए गोलाश्म पाये गये हैं।

फिर सहस्रों वर्षों के पश्चात् मौसम बदलने लगा और ठंड के बदले गर्मी पड़ने लगी। साथ साथ वर्षा भी होने लगी, और वायु-मण्डल में कार्बन डै-आक्सैड वाति बढ़ गई जो कि वनस्पति की अभिवृद्धि के लिये आवश्यक है। इसके परिणाम से सारे संसार में घने वन उत्पन्न हुए और भारत के दामोदर, सोन महानदी आदि घाटियाँ, वनों से घिर गईं। संभव है कि ये अवसन्न घाटियों में आसपास की नदियाँ बह आई हों और बरसात का पानी जमा हो जिससे ये कच्छमय (Marshy lakes) झीलों में परिणत हो गईं। इन नदियों के साथ साथ, साद, बालु, मिट्टी, और मृत वनस्पति, पशु शव इत्यादि सामग्री झीलों के फर्शों में इकट्ठी होती गईं। इस अवसादन (जो हर मौसम लाखों वर्षों से जमता जाता था) के भार से इन झीलों के फर्श और भी अधिक दबते जाते थे। अगले अध्याय में पता चलेगा कि इस प्रकार अवसादित निक्षेप का क्या हुआ।

समुद्री जीवः

इस काल में समुद्री जीवों की संख्या बहुत अधिक हो गई। उत्तर पश्चिम पाकिस्तान और काश्मीर प्रदेशों का सागर तरह तरह के मीनों से भरा हुआ था। काश्मीर के बनिहाल दर्रे में पीर पंजाल पहाड़ी चट्टानों में समुद्री जीवाश्म आज भी बिछे हुए मिलेंगे। इसी तरह हिमालय के स्पिति प्रदेश में भी समुद्री जीवाश्म दिखाई पड़ते हैं। इनमें काँटे-दार शंख (Nail shells) दीप शंख, लेम्प शेल, स्पोन्ज (Sponge) प्रवाल (coral) और

मसहरी (Mosquito net) की तरह का पोलीज़ोआन्स (Polyzoans) आदि प्रजातियों के जीवाश्म मिलते हैं।

अंगार युग में अनेक पृष्ठ वंशी (Vertebrates) प्रजातियाँ उत्पन्न हुईं। संसार के सागरों में कवच धारी (Armoured fishes) मीन लुप्त हुईं। पर फुप्फुस मीन (Lung fish) की संख्या बढ़ गई। एक नवीन प्रजाति के उभयचर उत्पन्न हुए जो कि आधुनिक सरट (Newets) के पूर्वज हैं। इनका तिकोना सर, बदन पर कवच, और लम्बे दुम होते थे। इनके छोटे छोटे पैरों में चार-चार उंगलियाँ रहती थीं। इस प्रजाति का नाम गहनदंत या लेबिरिन्थोडोन्टस (Labyrinthodonts) रखा गया है। यद्यपि ये मेढ़क वंश की ही थीं, फिर-भी इनका आकार मेढ़क जैसा नहीं था। इस काल में इनकी संख्या बढ़ गई। ये पृथ्वी पर १० लाख वर्षों तक अभिवृद्ध हुईं और अन्त में एकाएक लुप्त (Extinct) हो गईं।

पौधे :

जैसे पहले कह चुके हैं इस युग में वनस्पति (Vegetation) बहुत घनी होती गई। सारे संसार में चार मुख्य प्रजातियों के वृक्ष उत्पन्न हुए। एक वंश के वृक्ष उत्तरी अमरीका और दक्षिणी यूरोप में बढ़ गये। इस वंश में होंसटेल (Horse tail) लैकोपोड (Lycopod) लेपिडोडेन्ड्रौन (Lepidodendron) सिजिलेरियन्स (Sigillarians) इत्यादि प्रजातियाँ पाई गईं। इनको उत्तरी पादपजात (Northern flora) कहते हैं। दूसरे वंश के वन पूर्वीय यूरोप से सैबीरिया के पूर्वी सीमा तक विस्तृत था। इनको अंगार-पादपजात (Angara flora) का नाम दिया गया है। तीसरी प्रजाति की वनस्पति कोरिया, चीन, जावा और दक्षिण पूर्व एश्या में उत्पन्न हुई। इनकी मुख्य प्रजातियों के वृक्षों के जिह्वाकारी (Tongue shaped) पत्ते होते थे। (Gigantopteris) गैगनटोपटेरिस नामक चौथी जाति के वन भारत और
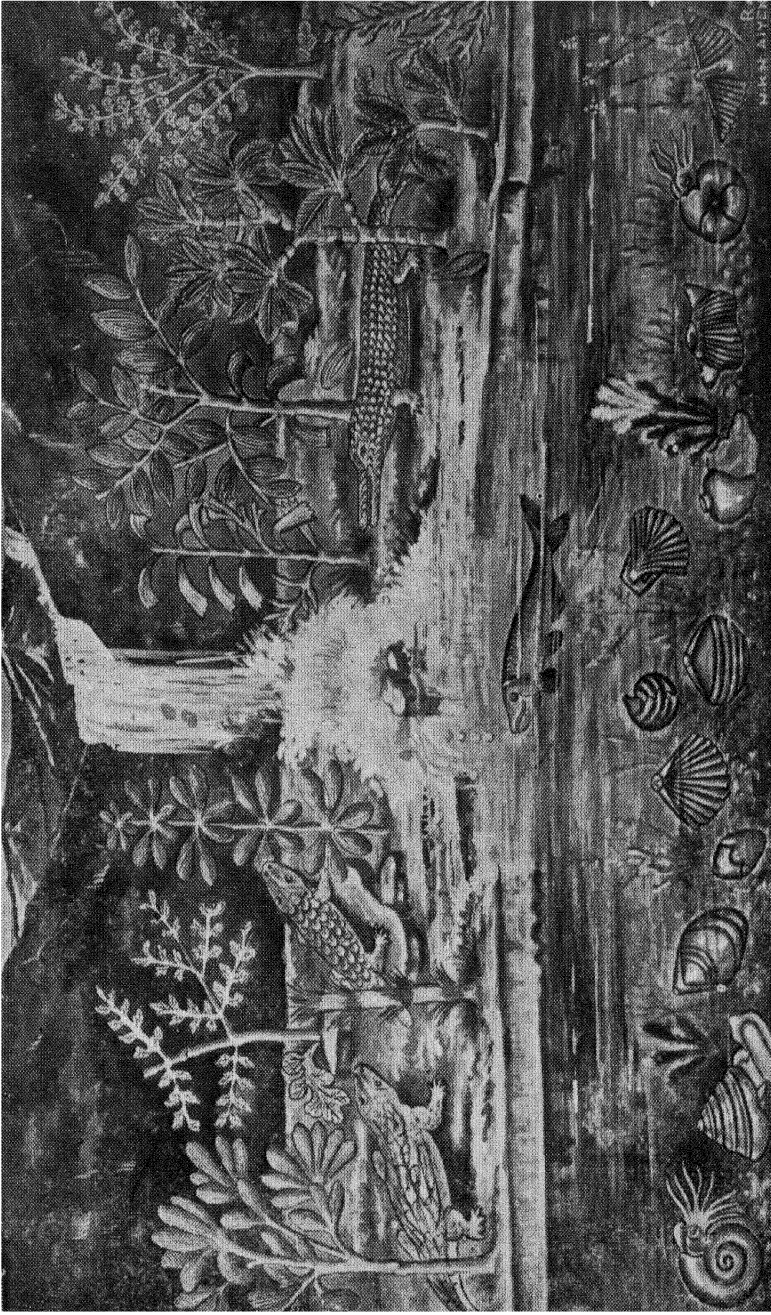
चित्र 4 : लगभग बीस करोड़ वर्ष पूर्व भारत में वनस्पति, थल और समुद्री जीव ।

समस्त गोंडवान भूमि में फैले थे। इनके विभिन्न प्रजातियाँ ये हैं— (१) ग्लोसोपटेरिस (Glossopteris) (२) न्यूरोपटेरिस (Neuropteris) (३) स्कीज़ोन्यूरा (Schizoneura) (४) पीकोपटेरिस (Pecopteris) चित्र ४ को देखिए।

इस समय भारत में कोई भी पशु पक्षी धरती पर नहीं निवास करते थे।

अध्याय १२

पर्मियन युग

(Permian age)

(२१-१८, करोड़ वर्ष पूर्व)

पर्मियन युग :

अब हम पुराकल्पीय युग के अंतिम काण्ड में प्रविष्ट होते हैं, जिसे भूवैज्ञानिक पर्मियन युग (Permian age) कहते हैं क्योंकि रुस देश के परमिया प्राँत में इस काल के अभिलेख (Records) पहले पहल पाये गये। भारत में इसे गिरि युग कह सकते हैं क्योंकि कई पहाड़ी शृंखलायें इस युग में बनी। यह अवधि लगभग दो करोड़ वर्षों की मानी गयी है।

संसार के अन्य प्रदेशों में समुद्र का भूमि से प्रतिसरण (Recede) हुआ, किन्तु उत्तरी भारत में टेथिस सागर भूमि के अधिकाँश भागों पर विस्तृत होता गया। टेथिस काश्मीर, गढ़वाल, स्पिति, और हिमालय के मौंट एवरेस्ट (Mount Everest) इत्यादि स्थानों में व्याप्त था। संभव है कि दक्षिणी पाकिस्तान के दक्षिणी पोतवार प्रांत समुद्र से आच्छादित रहा होगा। साल्टरेंज प्रदेश में भी समुद्र की एक शाखा विस्तृत थी। मध्य प्रदेश की समुद्री शाखा कुछ कुछ सूखकर उथली हो गई। काश्मीर

में ज्वालामुखीय उद्भेदन बढ़ते गये और आज भी इनके द्वारा निगला हुआ गोलाश्म और सखंड निक्षेप (Debris) दूर दूर पर देखे जा सकते हैं। इन में प्रमुख शंक्वाकार पहाड़ जिसे शंकराचार्य नाम दिया गया है, इसी प्रकार उत्पन्न हुआ। इस पहाड़ के चट्टानों में असंख्य छोटे छोटे रंध्र हैं जिनके अन्दर से ज्वालामुखीय वातियाँ प्राचीन काल में निकली होंगीं। ये ज्वालामुखीय उद्भेदन इतने भयंकर और तीव्र थे कि बाल्टिस्तान (Baltistan) पीरपंजाल, और ज़न्स्कार पहाड़ियों में इनके द्वारा उद्भेदित भूराल आज भी दूर दूर पर देखे जाते हैं, और अपनी मौन भाषा में इस युग का भूवैज्ञानिक इतिहास हमें बतलाते हैं।

ज्वालामुखीयों की शृंखलबद्ध क्रिया (Chain reaction) पहले लिदार प्रदेश में आरंभ हुआ और फिर नागमर्ग, सोनमर्ग, आदि प्रदेशों में फैल गया। हमें राजस्थान, बम्बई, उत्तर प्रदेश, इत्यादि के विषय में पर्याप्त भौगोलिक ज्ञान नहीं है। गोदावरी, सोन, और महानदी की कच्छमय घाटियाँ और भी अधिक अवसन्न हो गईं।

वनस्पति :

इस युग की जलवायु वनस्पति के विकास के लिए अच्छी थी। क्लब मोस (Club Moss) अब अपक्षीण होती गई और होर्स टेल (Horse tail) और सैकेड़ (Cycad) प्रजातियाँ बढ़ती गईं। इस समय भारत और सारे गोंडवान भूमि में ग्लोसोप्टेरिस (Glossopteris) और गंगामोप-टेरिस (Gangamopteris) प्रजातियां बढ़ती गईं। अन्य वृक्ष प्रजातियों के पारिभाषिक नाम ये हैं—स्फीनोपटेरिस (Sphenopteris) न्यूरोप्टेरिस (Neuropteris), स्कीज़ोन्यूरा (Schizoneura) और फैलोथिका (Phyllotheca). इनके सिवा सैकेड़ और शंखधर (Conifers) वृक्षों के भी वन इस काल में मौजूद थे। कलकत्ते के भारतीय संग्रहालय (Indian museum) में इस काल के वृक्षों के जीवाश्म एकत्रित किये गये है।

समुद्री जीव :

पर्मियन युग में संसार के सागरों में ट्रैलोबैट प्रजाति अपवृत्त (Extinct) हो गई। प्राचीन प्रवाल (Coral) का भी अंत होने लगा। टेथिस सागर में अनेक प्रकार के बाहुपदा या ब्रेकियोपोड्स (Brachiopods) बढ़ती गईं। इनमें से मुख्य प्रजाति का पारिभाषिक नाम प्रोडकटस (Productus) रखा गया। साल्टरेंज (Salt Range) पहाड़ियों में आज भी शल्यपुट प्रजाति या प्रोडकटस के असंख्य कवच बिखरे हुए नज़र आते हैं। इन्हीं में स्पोन्ज, एमोनैट, प्रवाल, इत्यादि के शंख भी मिलते हैं। सच कहें तो साल्टरेंज पहाड़ियाँ पर्मियन युग के जीवाश्मों के प्राकृतिक संग्रहालय हैं।

पृष्ठवंशी जीवों में अनेक प्रजातियों के ग्राह (Shark) और हड्डीदार मीन (Bony Fishes) उत्पन्न हुए। एक नई विचित्र प्रजाति उत्पन्न हुई जो आधी मीन और आधी उभयचर थी जिसका नाम सिमूरिया (Seymouria) रखा गया। इससे पता चलता है कि उभयचर जाति के प्राणी का उद्विकास (Evolution) मीन जाति से ही हुआ होगा। आफ्रीका में इस समय गहन-दन्त-प्रजाति (Labyrinthodonts) झीलों में निवास करती थी। इसके साथ में एक और स्तनवर्गी सरीसृप (Mammal-like reptile) बसी हुई थी जिसको डैसीनोडन (Dicynodon) नाम दिया गया है। द्विश दन्त या डैसीनोडोन प्राचीन मगर प्रजाति के ही वंश का था। (चित्र 4)

भारत में इसी समय पहले पहल पृष्ठ वंशी मीन उत्पन्न हुए। इनमें स्वच्छ पानी में रहनेवाली मछली का नाम एम्बलिप्टेरस (Amblypterus) था। जिसकी हड्डियों का एक जीवाश्म काश्मीर के चट्टानों में पाया गया। इस जीवाश्म से पता चलता है कि इसका शरीर छोटा था और इसकी बड़ी सी सूंड (तुण्ड) थी। इसका सर हड्डियों के कवच (Bony Plates) से ढका

था। इसके तैरने के लिए पक्षु (Fins) थे। इससे अधिक विचित्र प्राणी लेबिरिन्थोडोन्ट् (Labyrinthodont) थी जिसके विषय में आप कुछ सुन चुके हैं। लेबिरिन्थोडोन्ट् की एक प्रजाति इस युग में थी जिसका नाम आर्किगोसारस (Archaegosaurus) याने प्राचीने छिपकली (Ancient Lizard) है। यह लुप्त प्रजाति तीन फुट लम्बी थी। चित्र ४ में आप देखेंगे कि इसका तुण्ड (Snout) मगर का सा लम्बा था और आँखें हड्डी की पट्टों (bony plates) में ढकीं हुई थीं। इसके मुँह में अनेक दाँत थे। इसके आगे के पैर पीछे के पैरों से छोटे थे और इनमें चार चार उंगलियाँ लगी थीं। इसके बदन पर छत की खपरैल की तरह हड्डीदार पट्ट एक के ऊपर एक लगे हुए थे। करीब २० करोड़ वर्ष (२०० मिलियन वर्ष) पहले आदि सरठ प्रजाति काश्मीर के झीलों में बसी हुई थी।

अर्किगोसारस या आदि सरट के ही वंश की एक और प्रजाति बसी हुई थी जिसका भूवैज्ञानिक नाम एक्टिनोडोन (Actinodon) रखा गया। इसका एक जीवाश्म काश्मीर में वैही के चट्टानों में मिला है। इसके सिर का ही जीवाश्म सुरक्षित रखा गया। इससे पता चलता है कि यह मीन आदि सरठ से छोटा था। इसका सर मेढ़क की तरह तिकोना था। पर इसकी लम्बी सी पूँछ थी और आपको पता ही होगा कि मेढ़क की लम्बी पूँछ नहीं होती है।

काश्मीर से बहुत दूर मध्य प्रदेश में भी लेबिरिंथोडोन्ट वंश का एक जीवाश्म कंकाल (Fossilized skeleton) मिला है जो कि बलुआ पत्थर (Sandstone) में जमा हुआ था। इसका नाम गोंडवाना-सरठ (Gondwanasaurus) याने गोंडवान भूमि की छिपकली रखा गया। इसका सिर का हिस्सा ही सुरक्षित है। इससे पता चलता है कि इसकी करोटि (Skull) तिकोना है और उसके एक एक पार्श्व (Sides) में आँखें लगी हुई

हैं। इसके दाँतों से मालूम होता है कि यह उभयचर गहन दंत प्रजाति का ही है।

भारत में इस युग के जीवों में लेबिरिन्थोडोन्ट से अधिक विकसित कोई जीवाश्म नहीं मिला है।

प्रकृति की देन :

अच्छा तो ये हुई जीवित प्राणियों की बात। अब आप पूछेंगे कि जो मृत वनस्पतियां नदियों और झीलों में अवसादित हुई उनका क्या हुआ? ये वनस्पति झीलों के तल में ही हज़ारों वर्षों तक दबी रहीं और इनके ऊपर बालू, साद, मिट्टी के तह अवसादित होते गये यहाँ तक कि इनके भार से इस में एक तरह का अंदरूनी ताप उत्पन्न हुआ जिससे इस वनस्पति का जो कुछ कोमल भाग था, पानी में घुल गया, किन्तु बचा हुआ निक्षेप लाखों वर्षों तक ताप और दबाव के असर से काले काले पत्थरों में परिणत हुआ जिसको आज हम कोयले के नाम से जानते हैं। यदि आप बंगल या बिहार और मध्य प्रदेश के कोयले के क्षेत्रों (Coal Fields) में जाँय तो आपको पता चलेगा कि इन क्षेत्रों से हर वर्ष लाखों टन कोयला रेल्वे की जात्रों (Net work of Railways) द्वारा देश के अन्य प्राँतों को भेजा जाता है। कोयले के हज़ार फुट से अधिक गहरे खान इन क्षेत्रों में देखे जा सकते हैं। इस्तपात के साथ साथ आर्थिक विकास के लिए आवश्यक खनिज कोयला है। हिन्दुस्थान में भाग्यवश कोयले के बड़े बड़े आरक्ष बंगाल, बिहार, मध्यप्रदेश, और कुछ हद तक आँध्र प्रदेश में पाये जाते हैं।

कोयला सब से सस्ता औध्योगिक इंधन (Commercial fuel) है। इसके बिना रेल्वे, कारखाने, और मील चल नहीं सकतीं। लोकोमोटिव (Locomotive) में भाप (Steam) उत्पन्न करने के लिए ही नहीं, बल्कि सिमेंट

निर्माण, और अन्य कारखानों में ताप उत्पादन के लिए कोयला आवश्यक है। कोयले को बकभाण्ड (Retort) में बन्द करके गरम करने से वह कोक नामक कड़े ईंधन में बदल जाता है। कोक के निर्माण के साथ साथ कोल गेस भी उत्पन्न होता है जिसको नालियों द्वारा बड़े शहरों को परिवहण (Transport) किया जाता है। आपको पता ही होगा कि बड़े शहरों में कोल गेस से ही भोजन पकाया जाता है। कोल गेस के साथ अनेक मूल्यवान रसायनें (Chemicals) भी उत्पन्न होते हैं। इन में मुख्य बेन्ज़ोल, टेलुओल, इत्यादि हैं। सड़कों की कोल-टार भी इसी से उत्पादित है। अनेक विशेष प्रकार के विधायनों (Special processes) से कोयला पेट्रोल, और पेट्रोलियम के उत्पादों (Petroleum products) के निर्माण में भी उपयोगित है।

यद्यापि भारत में कोयले के विस्तीर्ण क्षेत्र हैं फिर भी एक खास प्रकार के कोयले से कोक बनाया जा सकता है, और इस विशेष (Particular type of coal) कोयले की हमारे देश में कमी है। भारत में हर वर्ष पाँच करोड़ टन कोयला निकाला जाता है और हमारा ध्येय है कि तीसरी पंचवर्षीय योजना के अंत में दस करोड़ टनों का उत्पादन हो जाँय।

अध्याय १३

मेसोज़ोइक महायुग

(Mesozoic age)

अब हम भारत के प्राचीन भूवैज्ञानिक इतिहास (जो कि तीस करोड़ वर्षों तक व्यापक था) से मध्यकालीन या "मेसोज़ोइक" युग की ओर बढ़ते हैं। पुराकल्पीय युग का भूवैज्ञानिक इतिहास अधूरा ही है क्योंकि इस काल की पशु प्रजातियाँ सब संसार से लुप्त हो गई हैं और इनकी

कल्पना करना ही कठिन है, इतिहास बनाने की क्या कहें। भूवैज्ञानिक इतिहास के लिए अभिलेख सामग्री पशु और वनस्पति के जीवाश्म, आवश्यक हैं, पर इतने युगों के पश्चात् ऐसे पूर्ण जीवाश्मों का मिलना प्रायः असंभव है। इस कारण, पुराकल्पीय युग का इतिहास धुँधला और कल्पित ही प्रतीत होता है।

मध्य कालीन युग को मेसोज़ोइक (Mesozoic) कहते हैं। यह युग करीब १२ करोड़ वर्षों (१२५ मिलियन वर्ष) का माना गया है। इस महान काल में धरती और समुद्र में अनेक परिवर्तन हुए।

१८-१५ करोड़ वर्ष पूर्व :—

मेसोज़ोइक युग के आरंभ के वर्षों को त्रियस (Trias) या तीन भागीय युग कहा गया है। इसे भारती भूवैज्ञानिक "रक्ताश्म युग" कहते हैं। यह करीब तीन करोड़ वर्षों का माना गया है। पृथ्वी पर धरती और सागर के क्षेत्रों में कुछ कुछ अंतर होने लगे। कुछ वैज्ञानिकों के अनुसार उत्तरी अम्रीका और आइसलेण्ड इस समय एक महाद्वीप था। उत्तरी यूरोप और उत्तरी एश्या दूसरी महाद्वीप थी, और तीसरी महाद्वीप गोंडवान भूमि थी।

भारत की भौगोलिक सीमाओं में ख़ास अंतर नहीं हुआ। टेथिस सागर, सिंध, बलूचिस्तान, दक्षिणी पाकिस्तान गढ़वाल, और साल्टरेंज प्रदेश तक विस्तृत था। इस सागर की एक शाखा चीन देश के टोन्किन (Tonkin) प्रान्त तक फैल गया। मलाया में भी समुद्र व्यापक था। किन्तु भारत के पूर्व में इस सागर के तट का कोई चिह्न नहीं है। मध्य प्रदेश में समुद्री शाखा कई वर्षों से सूख चुकी थी। इस काल के समुद्री और थल जीव और वनस्पति को चित्र ५ में देखिए।

जलवायु :

सारे संसार में पिछले युग की आर्द्र (Moist) दशा से बदलकर जलवायु रुखी, सूखी हो गई। गोडँवान भूमि में वनस्पति क्षीण (Decline) होने लगी किन्तु यूरोप में आरोकेरिया (Araucaria), स्प्रूस (Spruce), सेकोया (Sequoia), क्लब-मोस (Club moss), मेडन-हेर (Maiden hair) हॉर्स-टल आदि समृद्ध हुईं। भारत में अत्यंत सूखी जलवायु होने के कारण वृक्षों की संख्या घटने लगी। परमियन युग की समस्त वनस्पति— जिनमें ग्लोसोपटेरिस इत्यादि थीं सब अपक्षीण (Decline) होती गईं।

समुद्री जीव :

समुद्री जीवों में दीपशंख (Lamp shells) अपक्षीण होती गईं। उनके स्थान पर बैवाल्व (Bivalve) उत्पन्न हुईं जिनमें मुख्य शुक्ति (Oysters) और काँटे-दार शंख (Nail shells) थे। अब तक प्रवाल (Coral) सीधी सादी आकार का रहता था, किन्तु उसमें भी एक छे: अंगों की प्रजाति उत्पन्न हुई जिसका हेक्साकोरेलिया (Hexacorella) नाम रखा गया है। एमोनैट प्रजाति (Ammonite) की संख्या अधिक हो गई। इनका बिम्बात्मक (Disc-like) आकार था और इनके कवच पर ज़ीन (Saddle-like) की सी लकीरें बनी हुई थीं। इस प्रकार के आभूषण (Ornamentation) से ही भूवैज्ञानिक इनकी तिथि (Date) को निश्चित करते हैं। एक नई प्रजाति का जीव उत्पन्न हुआ जिसको बेलमनैट (Belemnite) का नाम दिया गया है।

पहले ही कहा गया है कि फुप्फुस मत्स्य की संख्या पिछले युगों में बढ़ गयी। फुप्फुस और हड्डीदार मीन इस युग में भी समृद्ध होती गईं। फुप्फुस मीन में साँस लेने के लिए एक थैली सी बनी हुई थी, जैसे भूमि के प्राणियों में पाया जाता है—और साथ साथ तैरने के लिए सिर पर क्लोम (Gills) भी थीं। जब झीलों और नदियों में खूब पानी था तब यह मीन

पानी में रहती थी और जब गरमी के मौसम में पानी सूख जाता था, तब यह मीन भूमि में साँस ले सकती थी। लेबिरिन्थोडोन्ट प्रजाति (Labyrinthodonts) अब अपक्षीण होने लगी। चित्र ५, देखिये।

सरीसृप (Reptiles) :

इस युग में संसार में सरीसृप प्रजाति की संख्या बढ़ती गई। सरीसृप विभिन्न प्रजातियों की संख्या में अन्य सब पृष्ठवंशी पशुओं से अधिक थी। पहले पहल का सरीसृप (Reptile) मगर था जो छिपकली के आकार का था, और तीन चार या पाँच से सात फुट लम्बा रहता था। परन्तु इनका आकार निश्चित रुप से नहीं उद्विकसित हुआ था। कुछ प्रजातियाँ भूमि पर निवास करती थी, पर आश्चर्य यह कि कुछ सरीसृपों के पंख निकले और वे चिड़ियों की तरह उड़ने लगीं। इनको टेरोडेकटैलस (Pterodactyles) नाम दिया गया है। जो सरीसप पानी में रहती थीं उनका आकार मीनों का सा बन गया। इसलिए उनका नाम मीन सरट (Ichthyosaurus) पड़ा और थल में बसने वाली सरीसृपों का नाम डैनोसारस (Dinosaurus) रखा गया। रैनकोसारस (Rhynchosaurus) नामक एक प्रजाति जिसका सिर चिडियों की तरह था, और बदन सरीसृप की तरह सदैव कच्छ मृदा में बसा करता था। कुछ स्तनीवर्गी सरीसृप प्रजातियाँ (Mammalian reptiles) भी उत्पन्न हुईं जिनसे संभवतः स्तनीवर्गी पशुओं का उद्विकास हुआ हो। इस काल के चट्टानों में अनेक प्रजातियों के जीवाश्म—ड्रोमाथेरियम (Dromatherium) ट्रैलोडोन (Tritylodon) आदि मिलते हैं जिनमें सरीसृप और स्तनीवर्गीय पशुओं के गुण मिले हुए हैं। इसी समय ट्रेसोचेलिस (Trissochelys) नामक प्रजाति उत्पन्न हुई जो आजकल के कछुवे का पूर्वज है।

पहले कहा जा चुका है कि पृष्ठ वंशीय प्रजातियाँ संसार में अभिवृद्ध हुई। किन्तु भारत में इनके अनेक जीवाश्म नहीं मिलते। ग्राह (Shark)

आकार के मीनों के जीवाश्म साल्टरेंज पहाड़ियों में मिले हैं। मध्य प्रदेश और आन्ध्र के कच्छमय प्रदेशों में फुप्फुस मीन की कुछ प्रजातियाँ बस गई थी। इनमें से एक प्रजाति को सेराडोटस (Ceradotus) नाम दिया गया है क्योंकि इस मीन का तुण्ड (Snout) सिगार (Cigar) की तरह था। कच्छ मृदा में बसने के कारण इसके तैरने के अंग दुर्बल होते गये। जैसे आप चित्र में देखते हैं, इसके शरीर पर दंत की खपरैल की तरह पट्ट बने हुए थे। इस मीन में साँस लेने के दो अंग थे, एक क्लोम (Gill) और दूसरा फुप्फुस (Lung) संभव है इस प्रकार के किसी मीन से ही उभयचरों का उद्विकास हुआ होगा।

इन भू-मीनों (Land fishes) के साथ साथ लेबिरिंथोडोनटे (Labyrinthodonts) प्रजातियों की संख्या भारत में अन्य देशों की अपेक्षा बढ़ती गई। इसकी एक प्रजाति का नाम केपिटोसारस है जो कि करीब तीन फुट लम्बी, मगर के आकार की थी। इसका सिर चौड़ा और भारी था और गोलाभ-तुण्ड (Rounded snouts) में अंत होता था। सिर के पीछे की ओर इसकी आँख लगीं थी। इसके मुँह में साधारण दाँतों के अलावा दो उछन्त (Tusks) थे। इसके छोटे छोटे चार पैर थे। यद्यपि यह मेंढ़क जाति का माना गया है, फिर-भी इसकी लम्बी सी पूँछ थी जैसे मेढ़कों में नहीं होती। मेंढ़क का यह विचित्र पूर्वज १६ करोड़ वर्ष पूर्व, पचमारी पहाड़ियों में देनवा (Denwa) नदी की सुन्दर घाटी में बसा हुआ था। इसी की तरह एक और उभयचर इस काल में बसा था जिसे मेटापोसार (Metaposaur) नाम दिया गया है।

भारतीय उभयचरों में सब से विशाल मेस्टोडोनासारस (Mastodonsaurus) इसी युग में मध्य प्रदेश के पचमारी पहाड़ी की देनवा घाटी में बसा हुआ था। यह उभयचर २० फुट लम्बा था और मगर के आकार का था। इसके सारे शरीर पर चित्रण किये हुए पट्ट (Sculptured plates) से

बने हुए थे। इसका सिर करीब दो फुट लम्बा था और सिर के पीछे की ओर दोनों तरफ़ आँखे धंसी हुई थीं। इसके मुँह को चीरते हुए दो भयंकर उद्दन्त (Tusks) निकले हुए थे। इसके दाँत शंक्वाकार (Conical) थे। इसका जीवाश्म रक्षित नहीं रखा गया।

भारत के भू-सरीसृपों (Land reptiles) का प्रतिनिधि, और भारतीय मगर का पूर्वज, बेलोडोन (Belodon) नाम का सरीसृप है। देखिये तो, भारत में मगर वंश की परम्परा १५ करोड़ वर्ष पुरानी है। दामोदर की घाटी में द्विश दन्त (Dicynodon) नामक स्तनीवर्गीय सरीसृप के कुछ अंश मिले हैं। इसका छोटा और चौड़ा सिर था और लम्बे लम्बे उद्धन्त की तरह दाँत मुँह के आगे की ओर थे। यह जानवर कच्छ मृदा (Marshy soil) का प्रेमी था और अपने छोटे छोटे पैरों पर धीरे धीरे चलता था।

इससे अधिक मज़ेदार पैरापेडोन (Paradapedon) नामक सरीसृप था जो कि विशालांध्र के प्राणहिता नदी तट पर बसा हुआ था। इसका सिर विचित्र आकार का था और ऊपर नीचे के जम्भ चिड़िये की तरह दबे हुए थे। इसके छोटे छोटे दाँत थे और बहुत लम्बी दुम।

डैनोसारस (Dinosaurs) भी भूमि में रहनेवाली सरीसृपों की एक प्रजाति थी। भूमि सरट वंश की एक मांसभक्षी प्रजाति उस समय भारत में निवास करती थी जिसका नाम एपिकेम्पोडोन रखा गया है। इसका आकार अजीब था। छोटे से शरीर पर लम्बी सी गरदन और उस पर एक छोटा सा सर। इसके मुँह में अत्यन्त तीव्र शंक्वाकार दाँत थे। आगे के पैर पीछे के पैरों से छोटे थे, और इनकी पाँच उंगलियों में तीव्र नख लगे हुए थे। पीछे के पैरों में सिर्फ़ चार नखदार उंगलियाँ थीं। एपिकेम्पोडोन बंगाल के पन्चेत पहाड़ियों के आस पास के झीलों के तट पर निवास करता था। भीम सरट जाति की एक और छोटी प्रजाति रेवा (Rewah) के जंगलों में रहता था।

अध्याय १४

जुरासिक संकाल में ज्वालामुखी उद्भेदन और राजमहल सोपा-नाश्म

१५-२३ करोड़ वर्ष पूर्व—१५५-१३०

मध्य कालीन युग के मध्य संकाल के दो करोड़ वर्षों को जुरासिक काल कहते हैं क्योंकि स्विटज़रलेन्ड की जूरा नामक पर्वत इसी समय उत्पन्न हुआ। भारत में इसे महासरट युग कहा गया है।

इन दो करोड़ वर्षों के युग में संसार के भौगोलिक मानचित्र में कोई अन्तर नहीं हुआ। दक्षिणी यूरोप अब तक समुद्र से आच्छादित था। गोंडवान भूमि के अब टुकड़े टुकड़े होने लगे। भारत और दक्षिणी आफ्रीका के बीच भूमि का क्षेत्र संकीर्ण होता गया। आस्ट्रेलिया अब भी गोंडवान भूमि से जुड़ा ही था। भारत का उत्तरी भाग समुद्र से ढका हुआ था। चित्र ६ जहाँ आज हिमालय के सब से ऊँचे शिखर हैं वहीं टेथिस सागर के विस्तीर्ण तट की रेखाऐं खिची हुई थी। टेथिस की एक शाखा जेसलमेर और बिकानेर तक पहुँच गई थी, पर राजस्थान में इसकी खाड़ी बहुत उथली थी।

प्राय: द्वीप (Peninsula) भारत के मानचित्र (Geological map) में विंध्य पर्वत की उत्पत्ति के बाद कोई ख़ास भौगोलिक परिवर्तन नहीं हुआ। परन्तु बीते हुये ३५ करोड़ वर्षों की अवधि में दक्षिणी भारत प्रकृति का खिलौना था। आँधी, वर्षा और कठोर धूप से धरती परेशान हो गई और यहाँ के बड़े बड़े पहाड़ टूट फूट कर लोप हो गये। इसी बीच पृथ्वी में ऐसे उथल पुथल मचे कि टेथिस सागर कच्छ प्रदेश के अन्तर्गत घुस आया। पूर्व में भी समुद्र (जिसे हम बंगाल की खाड़ी कहते हैं)

आन्ध्र तक आ पहुँचा और इसका तट ओंगोल से एल्लूर (Ellore) तक फैल गया। समुद्र का भूमि पर आगमन के अतिरिक्त पृथ्वी पर ज्वालामुखियों ने भी अपना कार्य आरंभ किया। ज्वालामुखियों द्वारा उद्भेदित उष्ण द्रव्य दूर दूर तक गिरा और आसपास के वनों में आँग लगाता गया।
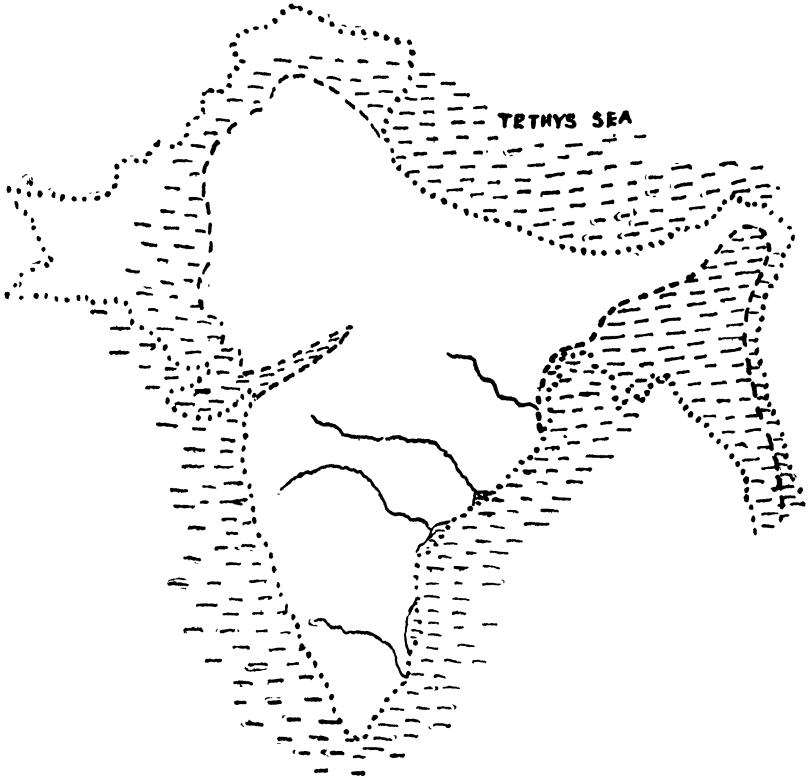
चित्र 6 टेथिस सागर.

इस उद्भेदित निक्षेप में ऐसे द्रव्य भी थे जो कि कोयले में परिवर्तित होने वाली वनस्पति का एक दम नाश कर देते थे। राजमहल क्षेत्र में ऐसे ज्वालामुखीय द्रव्य (Volcanic material) अधिक मात्रा में फेंके गये इसलिए इस क्षेत्र को राजमहल सोपानाश्म का नाम दिया गया है। इस द्रव्य को

कलकत्ता आदि शहरों के सड़कों के बनाने में प्रयोग किया जाता है। भाग्यवश ज्वालामुखियों का उद्भेदन जल्द ही बंद हो गया और पेड़ पौधों का विकास पहले की तरह होने लगा।

जलवायु :

पुराने युग की सूखी आबहवा बदलने लगी। वर्षा होने के कारण धरती फिर से हरी भरी हो गई। यह वर्षा रक्ताश्म और अंगार युगों की तरह भीषण नहीं थी। सारे संसार में सारूप्य वनस्पति उत्पन्न हुई—खास कर उत्तरी अफ्रीका और यूरोप में कुछ कुछ आजकल की प्रजातियों की तरह उत्तरी पादपजात (Northern flora) उत्पन्न हुए। हार्सटेल (Horse tail) और क्लबमास (Club moss) अपक्षीण हुईं, कंगुताल (Conifers) और शंखधर (Cycads) प्रजातियाँ बढ़ने लगीं। अफ्रीका में जिम्नोस्परम (Gymnosperm) याने नग्न-बीज-दार (Naked seed bearing) वृक्ष उत्पन्न हुए। गोंडवान भूमि पर पहले युगों की प्रजातियाँ लुप्त हो गईं और उनके स्थान पर तालवृक्ष प्रजातियाँ (Palm trees) और कंगुताल और शंखधर वृक्ष समृद्ध हुए। महासरट युग में भारत का नक़शा, चित्र ६ में देखिये।

समुद्री जीव :

समुद्री प्रजातियों में बैवाल्व (Bivalve), काटेदार शंख (Nail Shells) और 'सी अर्चिन (Sea urchins) इत्यादि बढ़ती गईं। एमोनैट प्रजाति (Ammonite) का विकास होता रहा और उसके कवच का आभूषण और अधिक जटिल (Complex) होता गया। (चित्र 6) आपको पता होगा कि हिन्दुओं की पूजा का शालिग्राम, टेथिस सागर के निवासी एमोनैट के शंखों पर सहस्रों वर्षों तक साद और मिट्टी के अवसादित होने से बनता है। इन शंखों को पण्डित विभिन्न देवाताओं के नाम देकर पूजा में रखते आये हैं। कभी कभी चमकीले शालिग्रामों की हज़ारों रुपये के दाम पर बिक्री हुई है।

चित्र 7 : लगभग बारह करोड़ वर्ष पूर्व भारत में वनस्पति, थल और समुद्री जीव।

चोर बाज़ार में ऐसे वैसे पत्थरों को शालिग्राम के नाम से आज भी बेचते हैं। इसके व्यापार का नियंत्रण नेपाल राज्य करता है। जुरासिक संकाल में समुद्र में पृष्ठवंशी मीनों की संख्या बढ़ने लगी। इनमें टेलियोस्टियान्स (Teleosteans) प्रजाति का विकास हुआ। इस समय सरीसृप प्रजाति संसार में प्रमुख होने लगी। समुद्र में इक्थियोसारस (Ichthyosaurus) सर्व साधारण हो गई। इसके तैरने के पक्ष समुद्री जीवन के लिए उपयुक्त थे। दूसरी प्रजाति के सरीसृप का नाम प्लिसियोसारस (Plesiosaurus) रखा गया। प्लिसियोसारस को समुद्री जीवन पसन्द था और ये अपने अनेक रिश्तेदारों के साथ जल में सुख से निवास करता था। इसी के कुटुम्ब का एक सरीसृप प्लैयोसारस (Pliosaurus) था जिसका छोटा गर्दन और अत्यन्त तीव्र दाँत थे।

इसी काल में डैनोसार (Dinosaur) समस्त भूतल पर अपनी धाक जमाये बैठी थी। इसकी माँसभक्षी प्रजाति अत्यंत क्रूर और भयंकर थी। शाकाहारी प्रजातियों का आकार बहुत विराट और स्थूल हो जाता था। इनमें से अनेक प्रजातियाँ स्तनीवर्गीय उभयचरों की तरह थीं और भूमि पर निवास करती थीं किन्तु ऐसी सरीसृप प्रजातियाँ भी थी, जो कि चिड़ियों की तरह उड़ सकतीं थीं। इनके आकार का निश्चित वर्णन नहीं किया जा सकता है। क्योंकि विभिन्न प्रजातियों के रुप में कुछ अन्तर रहता ही था। कई भीम-सरट हाँथी से विशाल आकार की थीं, ४०--५० टन इनका साधारण वज़न रहता था और सिर से पैर तक ७० फुट ऊँचाई रहती थी। कुछ प्रजातियों का गर्दन १० फुट लम्बा रहता था और सिर केवल एक फुट। विभिन्न प्रजातियों के पादों (Limbs) में भी अन्तर था, कुछ हाँथी की तरह स्थूल होती थीं और कुछ घोड़े की तरह पतली। कुछ प्रजातियों में आगे के पैर पतले पतले और पीछे के स्थूल होते थे। एक विचित्र भीम सरट प्रजाति देखने में हांथी की तरह थी, लेकिन इसका क्रौंच पक्षी का

। गर्दन था, और मगर का सा पूँछ। और एक अजीब आकार की जाति थी जो देखने में जलहस्ति (Hippopotamus) की तरह थी। इसके तले पतले सींग लगे थे। याद रखिये सरीसृप (Reptile) और उभयचर Amphibian) में काफी अन्तर है, और जलहस्ति उभयचर वंश का है। ;सलिए सींगदार सरीसृप विचित्र समझा जाता है।

डैनोसार (Dinosaur) की अनेक प्रजातियों के शरीर पर हड्डीदार ट्ट (Long bony plates) इतिहास के योद्धाओं के कवच (armour) की तरह बने हुए थे और संभव तो है ही कि डैनोसार योद्धा अपने कवच के साथ ललकारते हुए लड़ाई में लग गये हों, पर इसके विषय में भूवैज्ञानिक हमें कुछ नहीं बताते। एक भीम सरट (डैनोसार) प्रजाति का गर्दन शुर्तुर्मुग (Ostrich) की तरह लम्बा था जिससे वह वृक्षों के पत्तों को ज्यों के त्यों खा जाता था। एक प्रजाति का डैनोसार धानीकुरंग (Kangaroo) की तरह फाँग फाँग कर कूदता था। ये ही डैनोसार प्रजातियाँ समस्त संसार पर $2\frac{1}{2}$ करोड़ वर्ष पूर्व राज्य करती थीं। उत्तरी अम्रीका, दक्षिणी अम्रीका और यूरोप में इनकी संख्या बहुत अधिक थी, पर भारत और आस्ट्रेलिया में इतनी प्रजातियाँ नहीं बसी थीं।

इसी युग में एक विशेष प्रकार का उड़नेवाला सरीसृप था जिसे "पंख दार साँप" (Winged serpent) का नाम दिया गया। यह आकार में छोटा था—बस एक फुट का था, लेकिन इसका पूँछ काफ़ी लम्बा था। इसके आगे के अंगो के चर्म का यह पंखों की तरह प्रयोग करता था, पीछे के पैर छोटे थे और पाँच उंगलियों वाले थे। इसका करोटि (Skull) छोटा और चिड़ियों का सा था पर इसके मुँह में बहुत तीव्र दाँत थे। यह अपने पीछे के पादों से चिमगादड़ की तरह पेड़ों से लटक सकता था। इसका पारिभाषिक नाम टेरोडेकटैल (Pterodactyle) रखा गया है।

लगभग इसी समय पहले पहल पक्षियों का जीवाश्म उत्तरी अफ्रीका और जर्मनी में मिला है। यूरोपीय प्रजाति को अर्कियोपटेरिक्स (Archaeopteryx) का नाम दिया गया है। यह करीब चौदह करोड़ वर्ष पूर्व रहा होगा। यह प्रजाति आजकल की चिड़ियों से अनेक प्रकार से भिन्न था। आपको मालूम ही होगा कि आधुनिक चिड़ियों के दाँत नहीं होते हैं लेकिन अर्कियोपटेरिक्स के छोटे छोटे दाँत थे। आजकल की चिड़ियों की तरह उसकी भी छोटी सी पूँछ थी। पर उसके पंखों की बनावट में काफ़ी अन्तर था। यह पक्षी प्राचीन सरीसृपों से मिलता था। इसके जीवाश्म के अध्ययन से पता चलता है कि हमारे ज़माने की पक्षि प्रजातियाँ संभवत: सरीसृपों से ही उद्विकसित हुई होंगी। स्तनीवर्गीय जीवों की संख्या भी इस काल में अधिक होती गई।

समुद्री जीव :

भारत में पृष्ठवंशीय मीनों में कोई ख़ास विकास नहीं हुआ लेकिन मध्य प्रदेश में स्वच्छ पानी की झीलों में रहनेवाली अनेक प्रजातियों के मीन उत्पन्न हुए। कच्छ प्रदेश के समुद्री तट पर पंखदार इक्थियोसारस (Ichthyosaurus) प्रजाति मण्डरा रही थी।

प्रकृति की देन :

अंगार युग के पश्चात् मनुष्य का उपयोगी कोई खनिज नहीं बना। लेकिन महासरट युग में राजस्थान की उथली समुद्री शाखा में (जेसलमेर और बिकानेर के आस पास) चूर्ण साद (Lime Silt) अवसादित होता गया जोकि समय होने से सुन्दर पीले-शंख-पत्थर (Yellow shell Limestone) में बदल गया। इसी समय भारत के पूर्वीय तट में अथगढ़ नामक सुन्दर बलुआ-पत्थर बना जो कि उत्कल में कोनारक, भुवनेश्वर और पुरी के शानदार मन्दिरों में लगाया गया। फिर मध्य प्रदेश में इसी समय में अत्यन्त कोमल और सफेद चिकनी मिट्टी अवसादित हुई जिस पर आज वहाँ के कुम्हार अपनी कला दिखाते हैं।

अध्याय १५

खटी युग में सरीसृपों का राज

१३—६ करोड़ वर्ष पूर्व

खटी युग (Cretaceous period) :—

अब हम मेसोज़ोइक युग के तीसरे और अन्तिम संकाल पर पहुँचते हैं। इसे क्रेटेशस (Cretaceous) युग इसलिए कहते हैं कि इस समय सफेद चूने के बड़े बड़े पत्थर समुद्र के फर्श पर अवसादित होते गये। खटी युग में भूमि के स्तर पर अनेक परिवर्तन हुए और कई विचित्र घटनायें घटीं।

गोंडवान भूमि के टुकड़े टुकड़े होते रहे। इस समय टेथिस सागर संसार के अधिकाँश भूस्तर पर व्यापक हो गया। दक्षिणी यूरोप, तुर्की, मध्य एश्या (इरान, इराक) अफ़गानिस्तान, उत्तर पश्चिमी पाकिस्तान, (साल्ट रेंज पर्वत) काश्मीर, तिब्बत, इत्यादि प्रदेश समुद्र की कोख में सोये हुए थीं। भारत के पश्चिमी तट में किसी समुद्र की शाखा ग्वालियर और नर्मदा की घाटियों तक आ पहुँची थी और वहाँ से गुजरात, वादवाहन और पंचमहल तक फैल गई। भारत के पूर्वी तट पर समुद्र का आगमन और भी अधिक तीव्र था। बंगाल की खाड़ी सुदूर दक्षिण में तंजाऊर (Tanjore) और तिरुची (Trichinopoly) जिलाओं तक आ पहुँची और पान्डीचेरी (Pondicherry) और वृद्धाचलम् (Vriddhachalam) तक विस्तृत हुई। अस्साम और आन्ध्र प्रदेश में भी उसने आगमन किया। (चित्र 8)

जलवायु :

हिमालय श्रृंखलाओं से बर्मा तक सागरी तट के वितृत होने के कारण, और सारे प्रदेश में समुद्री शाखाओं के आगमन् के परिणाम से उत्तरी भारत की जलवायु मंद और समशीतोष्ण होने लगी। मध्य भारत में भी बंगाल
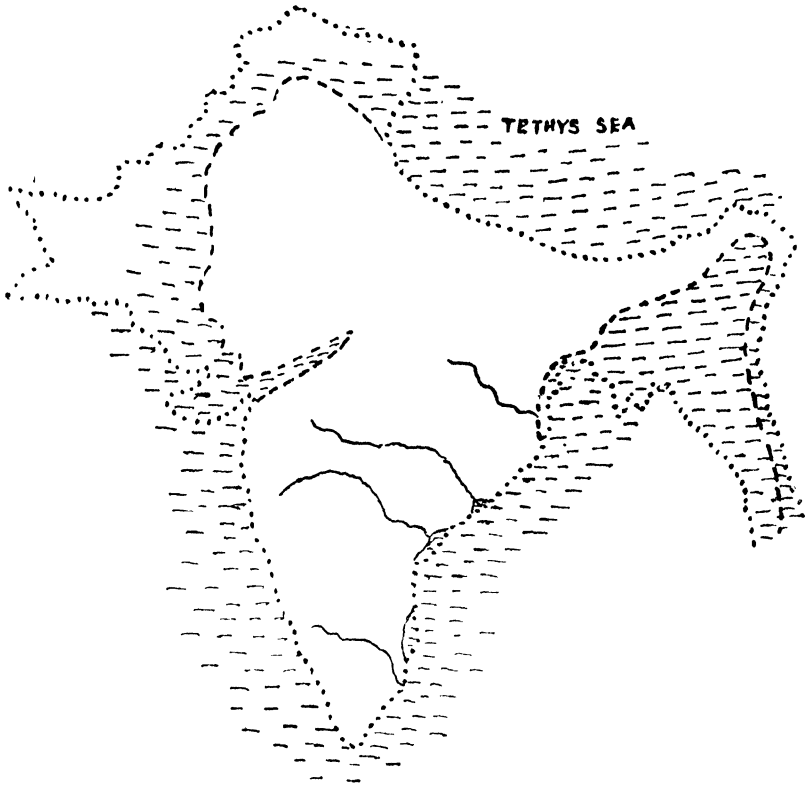
चित्र 8 खटी युग.

की खाड़ी के आगमन से जलवायु मृदुल थी। भारत के पूर्वी तट में भी अच्छी वर्षा होने लगी जिससे पेड़ पौधे विकसित होने लगे।

वनस्पति :

सारे संसार में सारूप्य वनस्पति उत्पन्न हुई। कंगुताल और शंखधर प्रजातियाँ सारी दुनियाँ में कुसुमित हुईं। मेगनोलिया (Magnolia) और सिनामन (Cinnamon) के फूलदार वृक्ष समृद्ध हुए। भारत में आलगे (Algae) नामक त्रिणक जाति (Water weed) का पौधा प्रचुर संख्या में उत्पन्न हुआ। भारत के पूर्वी तट पर ७० फुट ऊँचे वृक्षों के वन पाये जाते थे। इन्हीं के बीच छोटे छोटे कंगुताल वृक्ष भी उत्पन्न हुईं। राजस्थान के इदार जिले में मेटोनैडियम (Matonidium) और विज़केलिया (Weischelia) नामक मरुस्थल की प्रजातियाँ उत्पन्न हुईं जिससे प्रतीत होता है कि राजस्थान के कुछ हिस्से सूखे ही थे।

समुद्री जीवः

सागर में भी सारूप्य प्रजातियों के मीन उत्पन्न हुए। काँटेदार शंख (Nail shells) बैवाल्व (Bivalve) शुक्ति, प्रवाल, समुद्री फूल इत्यादि सागर में अनगिनत संख्या में बढ़ गए। एमोनैट (Ammonite) प्रजाति की अधिकतम (maximum) वृद्धि हुई। तिरुच्ची के आस पास की दक्षिणी सागर की शाखा में इस प्रजाति का आकार अत्यंत विशाल और भीषण हो गया। तिरुच्चिरापल्ली (Trichinopoly) के पास इनके बड़े बड़े जीवाश्म करीब तीन फुट लम्बे, पाये गये हैं। आकानथोसेरास (Acanthoseras) प्रजाति के एमोनैट की रीढ़ की हड्डी उसके कवच पर ही बनी हुई थी जिससे वह अपने शत्रुओं से सुरक्षित रह सकती थी। स्केफैट, टरीलैट (Scaphites and Turrilites) आदि एमोनैट प्रजातियाँ भी अभिवृद्ध हुईं। उन्हीं में बेलमनैट प्रजाति भी थी जिसकी भी अभिवृद्धि हुई। इसके जीवाश्म जगह जगह पर पाये गये हैं। बेलमनैट कलम के आकार की थी और सागरी

फर्शों में निवास करती थी। पश्चिमी पाकिस्तान के साल्टरेंज प्रदेश और भारत में तिरुच्ची के आसपास एमोनैट और बेलमनैट के ढाँचे बिखरे हुए पाये जाते हैं।

पृष्ठवंशी मीनों में ग्राह (Shark) सब से मुख्य प्रजाति है। हड्डीदार मीन (Bony fishes) भी भारत के आँतरिक समुद्र और झीलों में बसने लगी। क्रेटशस युग के अंतिम काल में सरीसृप प्रजाति जो पृथ्वी पर अधिकार कर चुकी शीघ्र की अपक्षीण होने लगी। इसके वंशज बस सांप, कछुवा छिपकल्ली और मगर ही रह गये। सरीसृपों के स्थान में प्राचीन स्तनीवर्गी पशु प्रजातियाँ उद्विकसित होने लगी।

भारत के स्वच्छ पानी की नदियों और झीलों में अनेक ग्राह जाति के मीन उत्पन्न हुए। पहले कहा जा चुका है कि दुनियाँ में सरीसृप प्रजाति की संख्या घट रही थी, किन्तु भारत में इसी युग में उसकी अभिवृद्धि हुई। मध्य प्रदेश, जबलपुर के आसपास के वनों में डैनोसार निवास करती थी। भारत में इस काल में लगभग २८ प्रजातियों के डैनोसार थे। कितने आश्चर्य की बात है कि आज की दुनियाँ में इन प्रभावशाली सरीसृपों में एक भी नाम मात्र केलिए नहीं बचा। क्या पता मनुष्य प्रजाति जो अपनी सत्ता पर इतना गर्व करती है, कालचक्र के घूमने पर इसी प्रकार विलीन हो जाय.........भविष्य के युगों की कल्पना ही भयानक है।

इन प्राचीन सरीसृपों के जीवाश्म अच्छी तरह नहीं सुरक्षित किये गये, इसलिए भारत में इनकी आत्म-कथा अपूर्ण ही रह गई। डैनोसार की सब भयंकर प्रजातियाँ माँसाहारी थीं। इनकी विभिन्न प्रजातियों के नाम जबलपूरिया (Jabalpuria) आरिसटोसूचस (Aristosuchus) ड्रिपटो-सारस (Driptosaurus) है। ये हलके बदन की थीं, इनका गर्दन लम्बा और सिर छोटा होता था। ये शेर की तरह अपनी शिकार पर कूदकर,

अपने तीव्र दाँतों से उसे चीरकर खा जाती थीं। इनका, शाकाहारी प्रजाति की तरह विशाल आकार नहीं था। भारत के मुख्य माँसाहारी डैनोसार का नाम मेगेलोसारस (Megalosaurus) रखा गया। इसका आकार अन्य डैनोसारगणों से विशाल था। यह ४५-५० फुट लम्बा और १०-११ फुट ऊँचा था। इसका एक फुट लम्बा सर छोटे से गर्दन पर टिका हुआ था। इसके तीन इन्च लम्बे छूरी की तरह तीव्र दाँत थे। इसके आगे के पैर छोटे थे और इनमें पाँच नखदार उँगलियाँ थीं। पीछे के पैर इनसे ज़्यादा लम्बे थे और इनमें बस चार उंगलिया थीं। यह सरीसृप अपने पीछे के पादों (limbs) पर ही बैठता था और इन्हीं पर चलने के लिए निर्भर था। मेगेलोसारस दक्षीणी समुद्री शखा के तटों पर आवास करता था।

जबलपुर के प्राचीन वनों का निवासी एलोसारस (Allosaurus) नामक माँसमक्षी डैनोसार था। यह ३५ फुट लम्बा था और इसका बदन अत्यंत भारी था। इसके दाँत अति तीव्र और प्रबल थे। चित्र 9 में आप देखेंगे कि इसके आगे के तीन उंगलियों वाले पैर, पीछे के दो उंगलियों वाले पैरों से छोटे हैं। उसके पीछे के पैरों के नख चिड़ियों के नखों की तरह अन्दर को धँसे हुए हैं। इन सब से क्रूर प्रजाति मध्य प्रदेश का निवासी टिरानोसारस (Tyrranosaurus) था जिसके लिए ठीक नाम "दैत्य-सरट" रखा जा सकता है। इसका भी विशाल बदन, छोटी सी गर्दन, और तीव्र नख और दन्त थे।

अब दूसरी प्रजाति के डैनासारों के विषय में सुनिये जो कि सरीसृपों की तरह नहीं थीं। ये बहुत छोटे छोटे आकर की थीं। एक प्रजाति केवल मुर्गी की तरह थी। इनके सिर छोटे, गर्दन छोटा और बस दो फुट की लम्बाई का शरीर था। यह जीव अपने पीछे के पैरों पर कूद कूद कर चलता था, आगे के पैर शिकार को पकड़ने में हाँथों का काम देते थे।

सका नाम कोम्पोगनेथस (Compognathus) रखा गया। इसके आगे के पैर लम्बाई में पीछे के पैरों के आधे ही थे और इनमें कुल दो भारी उंगलियाँ लगी हुई थीं। यह डैनोसार द्विपद (Biped) की तरह अपने दो पैरों पर ही चलता था। यद्यपि यह कुछ कुछ पक्षी की तरह था, फिर भी इसके दन्त और ढाँचा (Skeleton) सरीसृपों का सा ही है।

मध्य प्रदेश में शुतुर्मुर्ग (Ostrich) के आकार की डैनोसार प्रजातियाँ थीं जिनके पारिभाषिक नाम "ओरनिथोमैमस" (Ornithomimus) और स्ट्रुथियोमैमस (Struthiomimus) रखा गया है। स्ट्रुथियोमैमस शुतुर्मुग की तरह छोटे सर और लम्बे गर्दनदार थी। इसके गोल गोल आँखें थीं और चिड़ियों की तरह पूँछ थी। इसके पीछे के पैर, आगे के पैरों से मोटे थे और शुतुर्मुग की तरह इनमें तीन तीन नख दार उंगलियाँ थीं चित्र (९.)

अब तक हमने माँसाहारी डैनोसारों का ही ज़िक्र किया; अब शाकाहारी प्रजातियों के विषय में कुछ जानना चाहिये। इनके बड़े बड़े पेट और विशाल शरीर थे। ये चतुष्पद्दीय (Quadrupeds) थीं। इनमें से कई प्रजातियाँ १०० टन से अधिक वज़न की थीं। कई प्रजातियों की गर्दन ऊँट की सी थी और सर छोटा था। अनेक शाकाहारी डैनोसारों का दुम १०-१५ फुट लम्बा होता था। इनके दाँत चपटे और चमच्च के आकार के थे (flat and spoon like) और शकाहार के लिये उपयुक्त थे। इनमे एक सिटियोसारस (Ceteosaurus) प्रजाति मध्य प्रदेश का निवासी था। इसके पीछे की टाँगे आगे की से बड़ी थीं और इसके चमच्चीले (Spoon-like) दंत (Dentition) थे।

दूसरी प्रजाति का शाकाहारी डैनोसार जो कि मध्य प्रदेश के झील तट और वनों में भटकता था टिटानोसारस (Titanosaurus) के नाम से प्रसिद्ध है। यह अपनी नाक से पूँछ तक ५० फुट लम्बा और १५ फुट
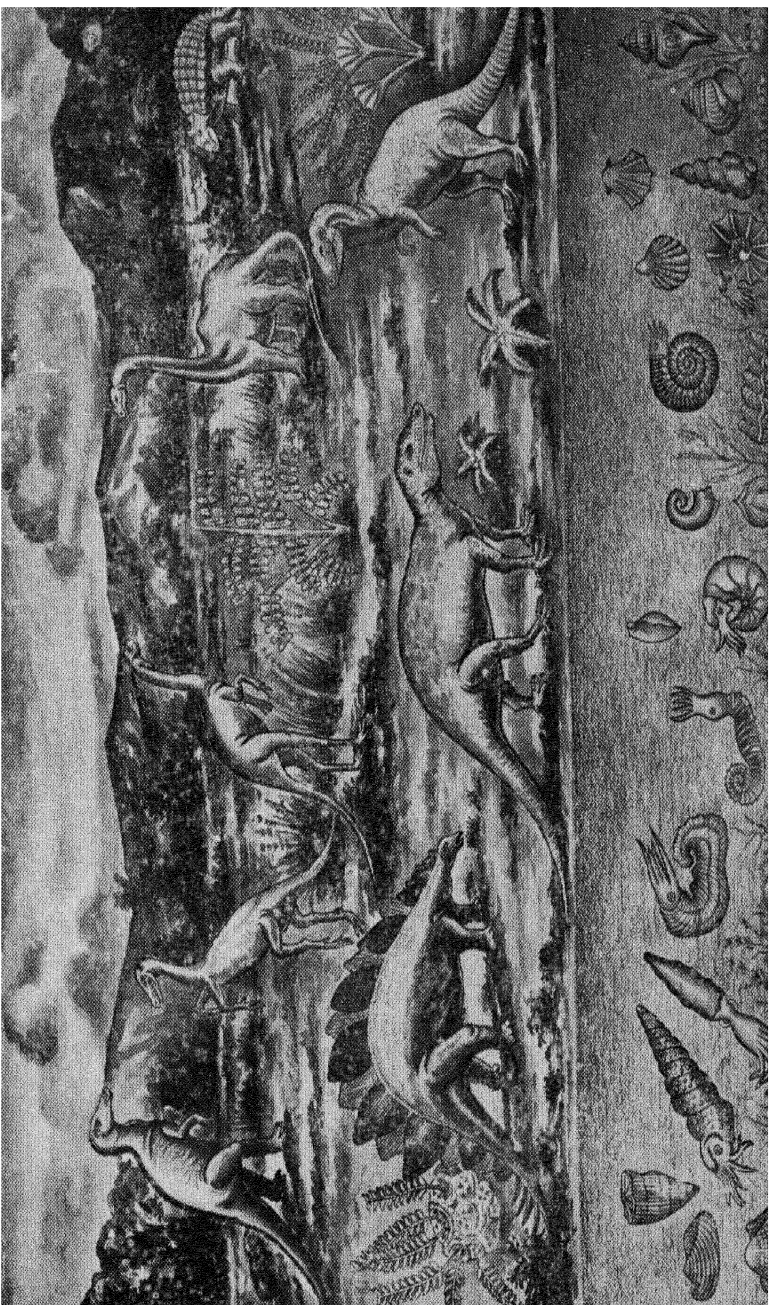
चित्र 9: लगभग नौ करोड़ वर्ष पूर्व भारत में वनस्पति, थल और समुद्री जीव।

उँचा था। इसका पेट अत्यन्त भारी था और भूमि तक लटका हुआ था। जबलपुर के पास इसके कंधे की जीवाश्म हड्डी मिली है जो कि २ फुट लम्बी है।

अत्यन्त गुरु आकार की डैनोसार प्रजाति का नाम ब्रेकियोसारस (Brachiosaurus) रखा गया जिसे "राक्षसी सरीसृप" (Giant reptile) कहते हैं। यह अति स्थूल प्राणी था। इसकी लम्बाई ८० फुट था और वज़न ५० टन था। इसका गर्दन इतना लम्बा था कि दो मंज़िल मकान के छत तक पहुँच सकता था। इसकी विशेषता यह थी कि इसके सर के ऊपर नास-रंध्र (Nostrils) थे जिनसे वह पानी में भी प्लवित रह सकता था।

स्टेगोसारस (Stegosaurus) और एक अजीब आकार का डैनोसार था। यह करीब २० फुट लम्बा था और इसका पीठ बहुत चापित (Arched) था। इसके आगे के पैर छोटे-छोटे होने पर भी पाँच उंगलियों वाले थे। इसके सर से पूँछ तक दो तिकोने पट्टों की श्रेणियाँ, पीठ के ऊपर से नीचे को होती हुई लगीं थीं (two rows of triangular plates running on its back)। इस के पूँछ के नीचे में दो मेख (Spines) लगे थे। इसकी ज़ीवाश्म हड्डियाँ दक्षिण में तिरुच्ची (Trichy) के पास मिलीं हैं।

आख़िर में एंकैलोसारस (Ankylosaurus.) के विषय में कुछ सुनिये, मालूम होता है कि यह कुछ आजकल के कछुए के आकार की थी। इसका सारा बदन, मुँह, आँखें सब एक तरह के पट्टदार चर्म कवच से ढ़का हुआ था। यह विचित्र जाँनवर क्रेटेशस युग में लगभग सात करोड़ वर्ष पूर्व जीवित था।

अब तक आप डैनोसारों का नाम सुन सुनकर परेशान हो गये होंगे। किन्तु इनके विषय में कुछ तो जानना चाहिये था क्योंकि इन्होंने हमारी दुनियाँ में इतना अधिक समय बिताया। फिर एकाएक इसी युग के अन्त में

यह भीषण प्रजाति विलीन हो गई। ऐसा क्यों हुआ हम नहीं कह सकते, पर यह ज़रुर है कि इनकी जगह जो स्तनीवर्गी प्राणियाँ प्रमुख हुईं वे इस युग के वातावरण और प्रकृति के जीवन संघर्ष के लिए अधिक युक्त थीं।

प्रकृति की देन: Nature's gift

क्रेटेशस युग में मनुष्य के उपयोगी क्या क्या खनिज उत्पन्न हुए? दक्षिण भारत में सागर के प्रतिसरण के परिणाम से लाखों टन जिपसम (Gypsum) मिलता है जिसे दालमियापुरम में सिमेंट (Cement) के उत्पादन के काम में लाया जाता है। इसी खनिज से प्लास्टर-आफ़-पेरिस (Plaster of Paris) बनाया जाता है।

इसी युग में उच्च कोटि का क्रोमैट (Chromite) दालमियापुरम के पास मिलता है। तिरुच्ची के आसपास की प्रवालियां (Coral reefs) जो इस काल में बनीं, सिमेंट के उत्पादन में उपयोगी हैं।

अध्याय १६

ज्वालामुखीय उद्भेदनों के कारण

पहले कहा जा चुका है कि इन लाखों वर्षों के युगों में पृथ्वी के आन्तरिक भागों में एक प्रकार का आन्दोलन (Disturbances) मचता ही रहा जो कि भूमि तट पर ज्वालामुखीय उद्भेदनों और भूकम्पों के रुप में प्रकट होता रहा था। आपको यह याद होगा कि इस प्रकार के उद्भेदन पिछले युग में काश्मीर और पश्चिमी बंगाल की राजमहल पहाड़ियों में हुए थे।

आप अब पूछेंगे कि जब पृथ्वी की गरमी दिन ब दिन कम होती जा रही थी तब इस प्रकार के उथल पुथलों का आख़िर कारण क्या था? वैज्ञानिकों ने इस प्रश्न के अनेक जवाब दिये हैं। उनकी एक धारणा है

कि धरती के ऊपरी ठोस स्थल के नीचे एक अर्धद्रुत (Semi Liquid) चट्टानों का स्तर था, जो कि ऊपरी पट्ट से अधिक भारी था। इसलिए ऊपरी स्तर का ठोस पुंज (Solid Mass) नीचे के आलग स्तर (Viscid layer) पर प्लवित सा था, जैसे पानी पर डाँट (Cork) के टुकड़े प्लवित रहते हैं। इस आन्तरिक स्तर में जगह जगह पर तेजोद्विर तत्व (Radio active elements) छिपे रहते हैं जिनमें से सदा ताप उत्पन्न होता रहता है। इस ताप के परिणाम से कभी कभी आलग स्तर और भी अधिक गरम होकर तरलित (Liquify) होने लगता है। इससे इस स्तर का पुंज (Mass) ऊपर का सा हलका हो जाता है, और वह प्लवित स्तर नीचे की ओर दबने लगता है और आसपास के समुद्र इसके अवसन्न क्षेत्रों में आ घुसते हैं। इसके प्रतिविधान में धरती पर जब कोई क्षेत्र धँस कर अवसन्न होता है तब उसके आस-पास की भूमि उत्थित होकर पहाड़ियों में बदल जाती है। जब यह सब होता है तब पहाड़ियों के साथ साथ पृथ्वी में अनेक दरार (Fissures) और रंध्र उत्पन्न होते हैं जिनमें ज्वालामुखीय उद्भेदनों में नीचे का आलग द्रव्य (Viscid matter) फूट पड़ता है।

दूसरे वैज्ञानिक सिद्धान्त के अनुसार धरती की विक्षुब्द परिस्थिति का कारण यह था कि संसार के सागरों के अन्तर्गत करोड़ों वर्षों से नदियों द्वारा खनिज सामग्री अवसादित होता जा रहा था। इस कारण समुद्र का आन्तरिक फर्श भूमि की पर्पटी से भारी हो जाती थी और प्रकृति समनवय स्थापित करने में उथल पुथल मचाती थी जिससे भारी स्तर हलका हो जाता था और हलका फिर से भारी।

चाहे जो हो खटी युग के अन्त में एक ऐसा भयंकर आन्दोलन मचा जिससे संसार का भौगोलिक मानचित्र काफ़ी बदल गया। भूवैज्ञानिकों के अनुसार गोंडवान-भूमि जिसके टुकडे-टुकडे होने लगे थे बिल्कुल खण्डित हो गई और उसका एक-एक भाग एक-एक दिशा में बहने लगा।

गोंडवान भूमि के अपखण्डन (Fragmentation) के साथ साथ उसके भारतीय भाग में एक भयंकर आक्षेप (Convulsion) मचने लगा। एक अत्यन्त भीषण ज्वालामुखीय उद्भेदन बम्बई के आस पास हुआ जिसके परिणाम से धरती में सैकड़ो मीलों तक दरारे बन गयीं, जिनके भीतर से उष्ण द्रव्य बाहर फूट पड़ता था। यह द्रव्य जिसमें द्रुत चट्टानों के साथ अनेक ज्वालामुखीय वातियाँ (Volcanic gases) थीं बाहर निकल कर वायु मण्डल में फैल जाता था, और उष्ण द्रव्य बेलगाम से कच्छ तक और बम्बई से राजमहेन्द्रम के पूर्वीय तट तक विस्तृत हो गया। इस समय के सखंड (Debris) के अध्ययन से पता चलता है कि कभी कभी भूराल (Lava) का प्रवाह ७० मील तक फैल जाता था। याद रखिये ये उद्भेदन लगातार नहीं बल्कि समय समय पर हुआ करते थे। पहले पहल के उद्-भेदन अधिक प्रचण्ड थे और इनके द्वारा निक्षेपित भूराल दूर दूर तक फैल गये। आखिरी उद्भेदन इतने तेज़ नहीं थे, और उनके द्वारा फिंका हुआ द्रव्य आस पास की भूमि पर ही गिर पड़ता था। दो उद्भेदनों के बीच कभी कभी हज़ारों वर्ष बीत जाते थे। एक ऐसे आन्दोलन के बाद, शान्ति स्थापित होती थी और पशु, वृक्ष इत्यादि समृद्ध होने लगते थे, जबकि दूसरे उद्भेदन मे एकाएक सब कुछ नाश हो जाता था।

इस प्रकार २९ ज्वालामुखीय प्रवाह उद्भेदित हुए। बम्बई प्रदेश में अवसादित भूराल की गहराई ७० हज़ार फुट घनी थी, जब कि कुछ दूरी पर इसकी नाप केवल १०० फुट से अधिक नहीं थी। इन्हीं द्रव्य स्तरों के मुटापे को नापने से पता चलता है कि कितने बार उद्भेदन हुए होंगे। अधिकतर एक एक स्तर का मुटापा पचास फुट से अधिक नहीं होता है।

इन उद्भेदित द्रव्यों के साथ साथ अनेक वातियां बाहर निकल जाती थीं और पृथ्वी के चट्टानों पर छोटे छोटे रंध्र (Holes) काट देती

थीं। भूराल के साथ अधिक मात्रा में राख भी तमाम भूमि पर फैल जाता था। गुजरात, काठियवाड़, गिरनार आदि स्थलों में ज़मीन में गोलाकार रंध्र (Circular holes) पाये जाते हैं जिन से प्राचीन युगों में उद्भेदन हुए होंगे। ज्वालामुखियों का संकाल लगभग २०-३० लाख वर्षों के अन्दर ही हुआ होगा।

आप अब पूछेंगे कि सब से प्रचंड उद्भेदन किस स्थान पर हुआ? यदि आप गुजरात से बेलगाम तक और बम्बई से नागपुर तक सैर करें तब अनेक काली शिखाओं वाले पहाड़ियों को देखेंगे जो कि प्राचीन काल में पृथ्वी के अन्दर से भूराल के रूप में निक्षेपित हुई। ये ही भूराल पर्वत हैं जिनसे समस्त प्रदेश का नाम दक्षिणी सोपानाश्म (Deccan trap) रखा गया। यहाँ के काले काले चट्टानों का पारिभाषिक नाम बेसाल्ट (Basalt) है।

इस प्रदेश के ज्वालामुखीय उद्भेदनों का प्रभाव भारत में और बाहर के दूर दूर प्रान्तों में भी पड़ा। काश्मीर, उत्तर पश्चिमी पाकिस्तान, अंदमान द्वीप, आराकान, बर्मा इत्यादि देशों में भी उथल पुथल मचने लगे जिनका मूल कारण दक्षिणी उद्भेदन ही माना जाता है।

प्रकृति की देन:

इस प्रकार के उद्भेदनों का अच्छा परिणाम यह हुआ कि पृथ्वी के अन्दर से अनेक प्रकार के खनिज बाहर निकल आये। बेसाल्ट (Basalt) चट्टानों पर लाखों वर्षों सूर्य ताप और वर्षा के प्रभाव से एक नया खनिज बना जिसे बाक्सैट (Bauxite) का नाम दिया गया है। बाक्सैट से ही अलुमिनियम का उत्पादन किया जाता है। अलुमिनियम विमानों के बनाने में अन्य हलके द्रव्यों के साथ काम आता है। भारत में ही प्रति वर्ष चार लाख टन बाक्सैट का खनन किया जाता है। वज्रायस-उत्पादों (Steel products) और सिमेंट इत्यादि की तैयारी के लिए बाक्सैट ईंटें

Bauxite bricks) आवश्यक हैं। विरंजन (decolourization) और गंधों को निकालने में बाकसैट काम आता है। बाकसैट से अलुमिनियम क्लोरैड-Aluminium chloride) अलुमिनियम सल्फेट (Aluminium sulphate) इत्यादि लवण तैय्यार किये जाते है। इसके अलावा हलके रंग के ज्वालामुखीय चट्टानों, का घरों के बनाने में उपयोग किया जाता है। बम्बई का भारत-द्वार (Gateway of India) दक्षिणी सोपानाश्म के चट्टानों से ही बनाया गया। कभी कभी इन चट्टानों के रंध्रों में जलसैकतिज या ज़ियोलैट (zeolite) नामक सुन्दर स्फटन (Crystals) मिलते हैं। इनके साथ अनेक मणियाँ, इन्द्रगोप (Carnelian) नीलराग (Amethyst) पाल्श्म agate) इत्यादि भी पाये जाते हैं। केम्बे (Cambay) में एक औद्योगिक विभाग इन्हीं मणियों के व्यापार में लगा रहता हैं।

अध्याय १७

कैनोज़ोइक महायुग और हिमालय का उत्थान:

अब हम दुनियाँ के भौमिकीय इतिहास के तीसरे काण्ड पर आते हैं जिसे कैनोज़ोइक (Kainozoic) युग का नाम दिया गया है। इस ६ करोड़ वर्षीय युग को अभिनव या कैनौज़ोइक इसी लिए कहते हैं कि इस समय के भौमिकीय परिवर्तनों के पश्चात् भूमि के स्तर पर कोई महान परिवर्तन आज तक नहीं हुआ और फिर इस समय के पशु पक्षी प्राय: आधुनिक प्रजातियों के ही सदृश थे। आज की उच्च श्रेणी की प्राणियों का उद्विकास कैनोज़ोइक युग की प्रजातियों से ही हुआ।

१. ६-४ करोड़ वर्ष पूर्व-अभिनव जीव (New Life)

इन दो करोड़ वर्षों के संकाल को इयोसीन या प्रादि नूतन (Eocene) काल इसी लिए कहते हैं क्योंकि इस समय की प्रजातियों से ही आजकल के पशु पक्षियों का उद्विकास हुआ।
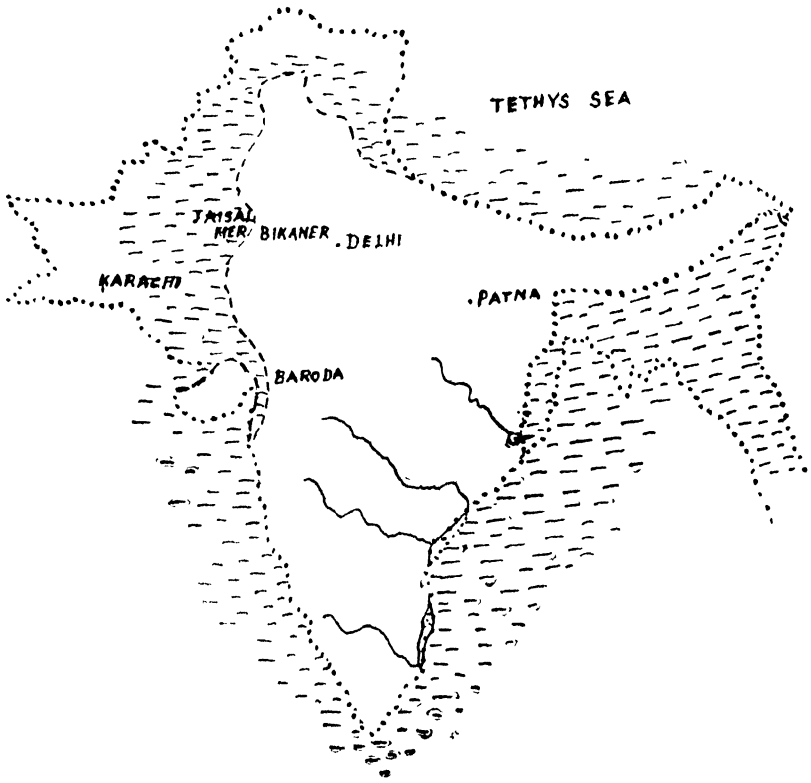
चित्र 10 इयोसीन सागर.

इयोसीन युग के आरंभ में टेथिस सागर जो कि यूरोप और एश्या को उत्तरी और दक्षिणी भागों में विभाजित करता था स्पेन देश के पिरेनीज़ पहाड़ी से पश्चिमी चीन तक विस्तृत था। बलूचिस्तान, पाकिस्तान, काश्मीर, पोतवार, गढ़वाल, दक्षणी तिब्बत, बर्मा इत्यादि देशों के अधिकांश भागों पर समुद्र आच्छादित था। पश्चिमी राजस्थान, कच्छ और गुजरात में पश्चिमी सागर की एक शाखा घुस आई थी, किन्तु पूर्वीय तट पर बंगाल की खाड़ी का प्रतिसरण (Recede) होने लगा। पूर्वी तट के कुछ स्थानों में उड़ीसा का मयूरभंज, पाण्डीचेरी और राजमहेन्द्रम में समुद्र की उथली

शाखा रह गई। बंगाल की खाड़ी उत्तर पूर्व अस्साम तक पहुँच चुकी थी और ब्रह्मपुत्रा की घाटियों में बढ़ आई। संभव है कि ब्रह्मपुत्रा और गंगा के नदी-मुखों का जलोढ़ निक्षेप (Alluvial Deposit) किसी प्राचीन सागर के फर्श पर अवसादित हुए हों। पर इस धारणा के लिए निश्चित प्रमाण नहीं है। (चित्र 10)

हिमालय का उत्थानः

भूमि पर परिस्थितियां अब तक अस्थिर थीं। आपको याद होगा ही कि टेथिस सागर के अन्तर्गत करोड़ों वर्षों से आस-पास की भूमि से साद मिट्टी इत्यादि सामग्री अवसादित होती जा रही थी। इसके परिणाम से स्पेन तक समुद्र का आँतरिक स्तर आस-पास के भू-प्रपंटी से अधिक भारी होने लगी। इसलिए इस महान भूखण्ड में अक्सर उथल पुथल मचते ही रहते थे, ज्वलामुखीय उद्भेदन भी समय-समय पर होते रहते थे जिससे हज़ारों फुट भूराल पृथ्वी के अन्दर से उँडेल दिया जाता था। टेथिस सागरी तट पर इस समय अत्यंत विस्तृत आन्दोलन मचा। दक्षिणी यूरोप की भूमि सागर से उन्मग्न (Emerge) हुई। इसके कई भाग १०-१५ हज़ार फुट तक उतिथत हुए और आज के आल्पस् पहाड़ियों के रुप में परिणत हुए। एशया का मध्य पूर्व (Middle East) अफ़गानिस्तान, इरान इत्यादि देश भी सागर के अन्दर से उत्थित हुए। भारत में भूमि का उत्थान और भी अधिक था। सारे टेथिस महासागर का फर्श अपने समस्त अवसादन के साथ उठकर हज़ारों मीलों तक फैली हुई हिमालय पर्वत श्रंखला का आधार प्रस्तर बना। इसी समय सिंध, पोतवार (पाकिस्तान) और काश्मीर प्रदेशों का टेथिस सागर से उत्थान हुआ। हिमालय के दक्षिण में एक अवसन्न घाटि बनी, जिसे आज भारतीय-गंगा घाटी, (Indo—Gangetic plain) का नाम दिया गया है। इन प्रदेशों में टेथिस सागर आन्तरिक झीलों के रुप में कहीं कहीं बच गया।

इस भयानक भौगोलिक आन्दोलन के कई कारण बताये जाते हैं। इनमें प्रमुख धारणा यह है कि सागर का फर्श ज़मीन से अधिक भारी होने के कारण, और क्यों कि प्रकृति की प्रेरणा सदा समन्वय स्थापित करने की ओर है, समुद्री फर्श ऊपर को उठ पड़ा। इस प्रकार उत्थित शृंखलाओं के तट पर बड़ी बड़ी घाटियाँ बन गईं। इस सिद्धान्त के अनुयायी सर एडविन बुराई (Sir Edwin Burrard) थे, जो कि पहले भारत के भूमिति अध्यक्ष (Surveyor General) रह चुके हैं। हिमालय की संरचना (Structure) में इस सिद्धान्त का प्रमाण मिल जाता है।

वेगेनर (Wegener) नामक वैज्ञानिक के अनुसार जब गोंडवान भूमि खण्डित होने लगी, तब उसके बड़े बड़े टुकड़े एक एक दिशा में प्रवाहित हुए (Drifted away)। इसका पश्चिमी भाग पश्चिम दिशा में ही बहकर दक्षिणी अफ्रीका का महाद्वीप बना, दक्षिण-पूर्वीय पुंज दक्षिण पूर्व में बहकर आस्ट्रेलिया का महाद्वीप बना, दक्षिणी समूह दक्षिण मे बहकर दक्षिणी ध्रुव कटिबन्ध (Antartica) बना, और भारत उत्तर पूर्व की ओर प्रवाहित हुआ।

गोंडवान भूमि का भारतीय खण्ड इस प्रकार बहकर टेथिस सागरी तट पर आ ठहरी जिसकी वजह से सागरी फर्श पर इतना प्रबल दबाव पड़ा कि वह समस्त अवसादन के साथ उत्थित हो गया। इस तरह हिमालय पर्वत माला की नींव पड़ी। वेगेनीर के अनुसार हिमालय की दक्षिणी सीमा पर गहरी घाटी की जगह एक लम्बा सा दर्रा होना चाहिये था। मलाया गणद्वीप जो कि गोंडवान भूमि का एक भाग था इसी समय खण्डित होकर छोटे छोटे द्वीपों में बदला। गोंडवान भूमि का मध्य प्रदेश अफ्रीका महाद्वीप के रुप में ज्यों के त्यों रह गया। इस सिद्धान्त को अन्य वैज्ञानिकों ने नहीं माना है।

भारतवर्ष में इन महान परिवर्तनों के उपरान्त सागरी तट में थोड़ बहुत अन्तरों के सिवा, कोई भारी भौगोलिक परिवर्तन नहीं हुआ। किन्तु

इन बड़े परिवर्तनों के परिणाम से जलवायु में भी काफी अन्तर होने लगा। भारत के उत्तरी सीमान्त पर अब कोई समुद्र नहीं रहा पर उसके स्थान पर हिमालय के गगन चुम्बी शिखर उठने लगे। इसके परिणाम से जो नदियां टेथिस में जा मिलती थीं उन्हें अन्य समुद्रों की ओर नये मार्ग ढूँढने पड़े। जैसे कहा जा चुका है, हिमालय श्रृंखला के सीमान्त और भारत की समतट भूमि के बीच एक विस्तृत और गहरी घाटी थी जिससे इधर की नदियों को भी नये निष्क्रम मार्ग ढूँढने पड़े। जिस किसी ने भी भारत के पश्चिमी समुद्र तट का अध्ययन किया हो, उसे पता होगा कि वह पूर्वी तट के जितना प्राचीन नहीं है, क्योंकि वह एक दम सीधी लकीर में है और बहुत कम घिसा हुआ है। अनेक भूवैज्ञानिकों के अनुसार यह तट किसी समय गोंडवान भूमि के अन्तर्गत थी और उसके टूटने की सीमान्त लकीर थी। यद्यपि राजस्थान में समुद्र लुप्त होने लगा, फिर भी इधर उधर छोटे छोटे झीलों में बच गया था। इस काल की नवीन नदियों (जिनका हिमालय पर्वतों में आविर्भाव हुआ) को बंगाल की खाड़ी और हिन्द-महासागर की ओर निष्क्रम मार्ग ढूँढने पड़े। हिमालय आकाश के बादलों के प्रति एक अवरोध के समान खड़ा हुआ था जिससे मेघ टकराकर घनघोर वर्षा होती थी।

वनस्पतिः

इयोसीन युग (Eocene age) के अन्त में आधुनिक पादपजात (Flora) उत्पन्न होने लगे। कंगुताल और शंखधर वृक्ष प्रजातियां अपक्षीण होने लगीं। इनके स्थान में अनेक फूल और फलदार प्रजातियाँ उत्पन्न हुईं। धरती के उष्ण स्थलों में जहाँ जहाँ अच्छी वर्षा होती थी, वहाँ घने जंगल बस गये। भारत में इस काल के अनेक तालवृक्ष प्रजातियों के जीवाश्म मिलते हैं।

समुद्री जीवः

सारे सागर में इस समय सारुप्य समुद्री जीव बसे हुए थे। सी अर्चिन (Sea urchins) शुक्ति (Oysters) प्रवाल (Coral) कांटेदार शंख,

(Nail shells) इत्यादि की संख्या अधिक थी। प्रवाल और नम्मेलैट (Nummulite) प्रचुर मात्रा में बढ़ती गई। नम्मेलैट की असंख्य प्रजातियाँ समुद्र में एकाएक उत्पन्न हुईं। एमोनैट (Ammonite) प्रजाति का इस काल में लोप हो चुका था।

जैसे पहले कह चुके हैं मध्य कालीन याने मेसोज़ोइक युग सरीसृपों का युग था। अभिनव या कैनोज़ोइक युग में स्तनीवर्गी जीवों का ही उद्विकास हुआ। सरीसृप प्रजाति का सिर्फ़ साँप, कछुआ, मगर, छिपकली ही प्रतिनिधियों के रुप में आधुनिक संसार में पाये जाते हैं। स्तनीवर्गीय प्रजातियाँ इयोसीन युग में एश्या, आफ्रीका, उत्तर और दक्षिणी अमरीका, बर्मा इत्यादि देशों में बस गये। इनमें कई माँस भक्षी प्रजातियाँ भी थीं। किंतु आधुनिक सिंह और बाघ पैदा ही नहीं हुए थे। आद्य (Primitive) स्तनीवर्गी प्रजातियाँ विशाल आकार की थीं और वेग से नहीं चल सकती थीं। इनमें एक शाकाहारी, सूअर के आकार की प्रजाति थी जिसे एन्थराकोथेरा (Anthracothera) का नाम दिया गया है। इसकी विभिन्न प्रजातियों के परिमाण में काफ़ी अन्तर था—कोई जलहस्ति की तरह विशाल थी और कोई बकरे की तरह छोटी। इस काल में शिशुधान प्रजातियों के स्तनीवर्गी जीव थे जो आधुनिक धानी कुरंग (Kangaroo) की तरह, अपने शरीर पर एक थैली में बच्चे को सुरक्षित रखते थे। उद्विकास की दृष्टि में इनसे अधिक मुख्य, आधुनिक घोड़े के पूर्वज, इसी काल में उत्पन्न हुए। यह इयोहिप्पस प्रजाति (Eohippus) छोटे परिमाण की थी, और वेग से नहीं दौड़ सकती थी। इसका शरीर कुछ कुछ कुत्ते का सा था। इस जीव के एक एक पैर में चार चार उंगलियाँ थीं जब कि आधुनिक घोड़े का बस एक ही पाद अंगुलि (toe) है जिस पर वह दौड़ सकता है। हाथी के प्रथम पूर्वज का जीवाश्म भी मिस्र देश में मिला है। इससे पता चलता है कि इसका परिमाण बस एक बकरी के जितना था

और इसका न तो सूँड था न दन्त। इसे मोइरीथेरियम (Moeritherium) का नाम दिया गया है। इसी काल में आफ्रीका, बर्मा और यूरोप में आध्य कपि प्रतिजायाँ उत्पन्न हो चुकीं थीं और संभव है कहीं पर आदि मानव भी पैदा हो चुका हो।

इसी समय भारत के सागरों और स्वच्छ पानी के झीलों में अनेक प्रकार की मीन प्रजातियाँ बसी हुई थीं। इनके पारिभाषिक नाम क्लूपियास (Clupeas), डैयोडोन (Diodon), केपीटोडस (Capitodus) है। सब से पहली मेंढक प्रजाति का जीवाश्म बम्बई के पास मिला है। इसका नाम इन्डोबेट्रेकस (Indobatrachus) रखा गया है।

भारतीय स्तनी वर्गीय पशुओं का सब से पहला जीवाश्म उत्तर पश्चिमी पाकिस्तान में मिला है। यह करीब ४ करोड़ वर्ष पूर्व नदियों के तट में बसा हुआ था। इसका नाम किरथारिया रखा गया क्योंकि यह किरथार पहाड़ियों में मिला है। यह जीव एन्थराकोथेरा या आदिघोणि प्रजाति के ही वंश का है। बर्मा के घने जंगलों में अनेक प्रजातियों के प्राचीन स्तनीवर्गी प्राणी बसे हुए थे। इनमें साधारणतः एन्थराकोथेरा ही पाया जाता था। इसके झुण्डों के साथ साथ, टापिर नामक घोड़े का सा जानवर भी इधर उधर भटकता रहता था। आधुनिक टापिर को हम भारतीय प्राणी-उद्यान (Zoological gardens) में देख सकते हैं। अनेक विशाल चतुष्पदीय जीव भी बर्मा के वनों में निवास करते थे। इनमें से अनेक पशु गण्डक प्रजाति के सदृश थे। इनमें एक विशेष प्रजाति का अजीब सा मुँह और तुण्ड था और महास्थूल शरीर। इसको पेरामैनोडोन (Paramynodon) नाम दिया गया है। यह टैटानोथेरीस प्रजाति (Titanotheres) का ही एक वशंज है। टैटानोथेरीस प्रजाति जो अब अपवृत हो चुकी है, एक छोटे हाथी के सदृश थी जिसका मुँह गण्डक का सा था। इसके चेहरे पर मानो गढ़े खुदे हुए थे। इसकी करोटि में

अनेक रंध्र थे जिस से उसका वज़न कम हो जाता था, और नाक पर गण्डक की तरह दो सीगं थे। यह प्राणी अत्यंत मंद बुद्धि का था, इसीलिए जीवन संघर्ष में इसका उद्विकास नही हुआ। कलकत्ते के संग्रहालय में बर्मा के टैटानोथेरीस प्रजाति के अनेक जीवाश्म रखे हुए हैं। बर्मा में इसी काल के एक नरवानर के जम्भ (Fossil jaw) का जीवाश्म मिला है, जिसके वशंज बन्दरों के साथ साथ मनुष्य भी है। संभव है कि यदि बर्मा और आसपास के प्रदेशों में वैज्ञानिक रीति से खोज किया जाय तो अनेक आदि मानवों के जीवाश्म मिलें।

प्रकृति की देन:

आपको याद होगा कि इस युग के प्रारंभ में उत्तर पश्चिमी पाकिस्तान, अस्साम इत्यादि देश समुद्र के अन्तर्गत थे। पश्चिमी पाकिस्तान के आस पास की नदियाँ लाखों वर्षों तक प्रचुर मात्रा में रेत, मृत वनस्पति इत्यादि सामग्री को बहाकर इन अवसन्न वर्गों में निक्षेपित करती गईं। यह निक्षेप समय बीतने पर कोयले में परिवर्तित हो गया और अन्तर्वर्ती कालों में भूकम्पों द्वारा उत्थित (Uplift) हो गया। इस प्रकार निक्षेपित कोयले का खनन पूर्वीय साल्ट रेंज पहाड़ी के दण्डोत (Dandot) और पश्चिमी मकरवाल के पास सुरगुर पहाड़ियों में किया जाता है। यद्यपि यह अंगार युग के कोयले की तरह उच्च श्रेणी का नहीं है, फिर भी पाकिस्तान में सिमेन्ट के उत्पादन में यह काफ़ी काम आता है। भारत के पूर्वीय तट के अस्सामी पहाड़ियों में इस से श्रेष्ठ कोयले का क्षेत्र है जिसका भविष्य में अच्छा व्यापार हो सकता है।

कोयले से अधिक महत्वपूर्ण द्रव्य पेट्रोलियम, जिसे "सुन्हरा जल" (Liquid gold) कहते हैं अस्साम प्रदेश में प्राप्त होता है। आधुनिक जीवन के हर पक्ष (aspect) में इसका उपयोग अनिर्वाय है। पेट्रोलियम की कामयाबी को समझने के पहले हमे जानना चाहिए कि यह मूल्यवान

तेल धरती के भीतर किस प्रकार उत्पन्न हुआ और इस देश में कहाँ कहाँ प्राप्त हो सकता है। आपको याद होगा कि इयोसीन युग में बंगाल की खाड़ी की एक सागरी शाखा ब्रम्हपुत्रा की घाटी पर आच्छादित थी। इस समुद्री शाखा में अण्वीक्ष्य जीव (Microscopic organisms) पौधे और पशु, आल्गे और डयोटोम (Algae and diatoms) इत्यादि समृद्ध हुईं। जब समुद्री शाखा का प्रतिसरण हुआ तब इन सब जीवों का नाश होगया और सब के सब समुद्र तल (Floor of the sea) में निक्षेपित रह गईं, और इन पर भूमि का घना और गहरा आवरण छा गया। समय बीतने के साथ एक के ऊपर एक स्तर साद, मिट्टी, पत्थर इत्यादि के दबाव से अत्यंत ताप उत्पन्न हुआ, और मृत समुद्री जीवों पर बेक्टीरिया की क्रिया से, ये पेट्रोलियम तेल में परिवर्तित हुईं। इस परिवर्तन में पत्थरों में छिपी हुई तेजोद्गिर तत्वों (Radioactive rocks) ने भी भाग लिया। समय बीतने के साथ भूकम्पों के परिणाम से ये स्थरल समुद्री फर्श के साथ ऊपर उठकर कलाशाकार स्तूपों (Dome-like structures) में बदल गये। पृथ्वी पर अनेक प्रकार के उथल पुथल मचने से पेट्रोलियम इन स्तूपों में फँस गया (Trapped) और इन्हीं से तेल नगरखटिया, और दिगबाई में व्यधित किया जाता है। इस पर हमें याद रखना चाहिए कि इतना अधिक वैज्ञानिक जानकारी की सहायता से भी, निश्चय से नहीं कहा जा सकता है कि पेट्रोलियम किसी एक जगह मिलेगा या नहीं और भूमि में अत्यंत महँगी रीति से व्यधन (Costly process of drilling) करने से ही तेल की सम्भावना का पता चल सकता है।

भारत में अब तक समझा गया था कि अस्साम में ही पेट्रोलियम प्राप्त किया जा सकता है। पर हमारे वैज्ञानिकों ने अत्यंत खोज करने के पश्चात बताया है कि गुजरात, जेसलमेर, उत्तरी अस्साम, और दक्षिण भारत के कावेरी नदी-मुख में (Delta) यह मूल्यवान तेल पाने की

संभावनाएँ हैं। इधर कहना चाहिए कि इस प्रकार खोजने के परिणाम से आज गुजरात में केम्बे और अंकलेश्वर में पेट्रोलियम अच्छी मात्रा में पाया गया है।

अब जानना चाहिए कि पेट्रोलियम की उपयोगिता क्या है? धरती से तेल निकालकर रिफैनेरियों (Refineries) को नालियों (Pipe-lines) द्वारा परिवहण (Transport) किया जाता है। यहाँ पर विशेष प्रकार के विधायनों (Special processes) से कच्चे तेल से अनेक उत्पाद (जैसे पेट्रोल, केरोसीन, डीसल तेल, फरनेस तेल, बिटुमेन, मोम और अनेक प्रकार के स्निग्ध तैलों (Lubricating oils) की तैय्यारी की जाती है। इनके सिवा, सहस्रों औध्योगिक और रसायनिक उत्पादों (Industrial and chemical products) की तैय्यारी पेट्रोलियम से की जाती है। इनमें से गंधक, प्लास्टिकस् (Plastics) संश्लिष्ट तन्तु (Synthetic oils) विलायक तैल (Solvents) रसायनिक साबुनें (Chemical soaps) खाद (Fertilizers) और सस्य रोगों (Crop diseases) के नाश के लिए अनेक रसायनिक उत्पादों (Chemicals to fight crop diseases) का निर्माण किया जाता है। आशा है कि भविष्य में भारत में और अधिक मात्रा में पेट्रोलियम प्राप्त हो सकेगा। भारत के पूर्वी तट में लिगनैट (Lignite) का महानदी, कृष्णा, कावेरी, गोदावरी इत्यादि नदी मुखों (Deltas) में मिलना इससे भी अधिक संभव है।

नमक और एक अत्यन्त उपयोगी खनिज है जो केम्ब्रियन युग में साल्ट रेंज पहाड़ियों में पहले पहल अवसादित हुआ। उत्तर पश्चिमी पाकिस्तान खेउडा, खरख, नारी, भालीगत आदि स्थानों में नमकीली पहाड़ियाँ हैं जो प्राचीन समय में समुद्र के फर्श पर निक्षेपित लवण समूह थे। ऐसे नमकीले चट्टान, हिमाचल प्रदेश के मण्डी जिले में मिलते हैं। जिपसम (Gypsum) भी नमक के साथ साथ, जोधपुर, बिकानेर आदि

राजस्थानी प्रान्तों में पाया गया है। ये निक्षेप प्राचीन टेथिस के कोख में जमें हुए अवसादन हैं जो सहस्रों वर्षों के पश्चात्, पृथ्वी के भूस्तर पर उठ पड़े। संभव है सम्भार झील उस प्राचीन समुद्र का ही अवशेष हो, किन्तु हमें इसके विषय में पूरा प्रमाण नहीं मिलता है। इस झील से ही उत्तरी भारत का अधिकाँश नमक उत्पादित किया जाता है।

सिन्द्री का कृषि-उर्वरक कारखाने (Fertiliser factory) में राजस्थानी जिपसम का प्रयोग किया जाता है। साल्ट रेंज पहाड़ियों में चूना-पत्थर भी प्राप्त होता है।

अध्याय १८

ओलिगोसीन युग

(Oligocene period)

ओलिगोसीन संकाल में आधुनिक पशु और वनस्पति का आरंभः

कैनोज़ोइक युग (Kainozoic age) के दूसरे काण्ठ को ओलिगोसीन संकाल (Oligocene period) कहते हैं। इस समय यूरोप में पर्वतों की सृष्टि के साथ साथ ज्वालामुखीय उद्भेदन भी हुए। हिमालय, आल्पस, एन्डीज़, आदि पर्वत शृंखलाओं का आकार निश्चित हुआ। सारी दुनियाँ में जलवायु मन्द और कभी कभी गरम होने लगी।

भारत में इस युग में कोई ख़ास परिवर्तन नहीं हुआ। दक्षिणी ज्वालामुखियों के उद्भेदन अब बन्द हो गये। टेथिस सागर लुप्त हो गया पर सारे देश में इधर उधर खारे पानी के झील बच गये थे। पश्चिमी पाकिस्तान में भी सागर का प्रतिसरण हुआ किन्तु कच्छ, गुजरात और बलूचिस्तान के कई प्रान्त समुद्र के अन्तर्गत थे। (चित्र 10)

भारत में इस समय आधुनिक काल के पौधे और वृक्ष उत्पन्न हो ये। इनके साथ साथ आधुनिक प्रजातियों के सदृश समुद्री जीवों की ी उत्पत्ति हुई। भूमि पर पिछले युगों की प्रजातियाँ अपवृत्त (extinct) ोती गई। इस काल में मंगोलिया में बृहद् गण्डक प्रजाति या बलूचिथेरियम Baluchitherium) नामक एक अद्भुत जीव था। यूरोप में बेसींगदार ाण्डक प्रजाति (Hornless rhinoceros) के जानवर बसे हुए थे। आध्य हस्थि वंश का पेलियोमेस्टोडोन प्रजाति (Paleomastodon) ओलिगोसीन युग में बसा हुआ था, जोकि मोइरीथेरियम (Moeritherium) से अधिक विकसित था। यह जानवर ७½ फुट ऊँचा था। इसका सिर और गर्दन बहुत लम्बा था, और चेहरा सूअर का सा था। इसके नासा-विवर (Nostrils) सर के सामने (Anterior) को थे। इसके दन्त आधुनिक हाथी के दन्तों की तरह थे। इस काल में पुरा शंकु दन्त प्रजाति के पशु मिस्र के नइल नदी के तट पर निवास करते थे।

इसी युग में मेसोहिप्पस प्रजाति के घोड़े उत्पन्न हुए जिनके पैरों में तीन तीन उंगलियाँ थीं इसलिए मेसोहिप्पस प्रजाति (Mesohippus) पिछले युग के इयोहिप्पस प्रजाति से अधिक विकसित मानी जाती है। आध्य (Primitive) कपि और वानर भी यूरोप और एश्या में उद्विकसित होने लगे। बर्मा में पिछले युग की तरह स्तनीवर्गी जीव ही बसे हुए थे। भारत में इसी काल के किसी भी पशु का जीवाश्म नहीं मिला है।

अध्याय १९

मैयोसीन युग

(२-१ करोड़ वर्ष पूर्व)

बलूचिस्तान के महास्थूल स्तनी वर्गीय प्राणी :

आदि नूतन युग के पश्चात् के १२० लाख वर्षों के संकाल को मैयोसीन युग का नाम दिया गया है। इस समय भी संसार के भौगोलिक परिस्थितियों में थोड़ी-बहुत समायोजना होती रही। भारत में पहले के ७०–८०लाख वर्षों में किसी प्रकार का हलचल नहीं मचा किन्तु इतने दिन शान्त रहने के बाद पृथ्वी में एक तीव्र भूकम्प हुआ जिसके परिणाम से हिमालय पर्वतों का और भी अधिक उत्थान हुआ। (चित्र 11) टेथिस सागर लुप्त हो चुका था। हिमालय से उतरती हुई नदियाँ अपने साथ बालू, मिट्टी, गोलाश्म इत्यादि सामग्री लाकर पंजाब के अवसन्न क्षेत्रों में निक्षेपित करती गईं। इन अवसन्न क्षेत्रों में सबसे गहरी भारतीय गंगा घाटी (Indo-Gangetic plain) में थी। इस घाटी के अन्दर मध्य प्रदेश, राजस्थान और हिमालय की नदियाँ आ गिरती थीं।

अनेक भूवैज्ञानिकों के अनुसार ब्रह्मपुत्रा नदी जिस स्थान पर भारत के अन्दर आती है उसी स्थान पर एक प्राचीन नदी का उद्भव हुआ था। यह नदी पश्चिमी दिशा में भारती गंगा घाटी में बहते हुए हिमालय के चरणों में लिपटी हुई थी और अन्त में अरब-सागर में जा मिलती थी। भारत की बड़ी बड़ी नदियाँ, गंगा, यमुना, सरस्वती इत्यादि इसी की उप-नदियाँ (Tributaries) थीं। यह मैयोसीन नदी पृथ्वी पर दो करोड़े वर्षों तक थी। इसका नाम इन्डस और ब्रह्मपुत्रा को मिलाकर इन्डोब्रह्म (Indobrahm) रखा गया।
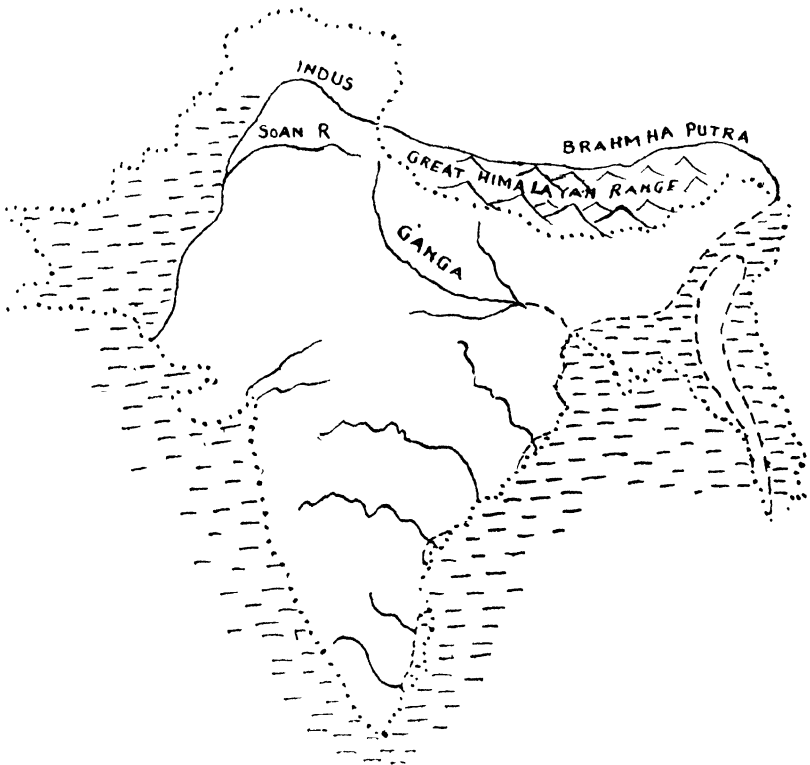
चित्र 11 मयोसीन काल में भारत का मान चित्र

इसी समय पूर्वीय समुद्र, उड़ीसा के मयूरभंज प्रदेश तक आ पहुँचा। इसी शाखा ने आन्ध्र प्रदेश पर भी आक्रमण किया, और यहाँ के नदी-मुखों पर फैल गया। क्रेटेशस और प्रादिनूतन युगों का सागर कड्लूर, पान्डीचेरी और वृद्धाचलम के अवसन्न प्रदेशों में बचा रहा। इस प्रकार के पश्चजल (Back water) में आस-पास अनेक नदियाँ मृत वनस्पति को प्रचुर मात्रा में निक्षेपित करती गईं। मद्रास के दक्षिणी ऑकट जिले में एक "जीवाश्म जंगल" (Fossilized forest) है जोकि देखने लायक है। इसमें अधिकाँश ताल वृक्ष और अन्य प्रजातियों के फूलदार वृक्ष भी हैं।

पशु :

शिवालिक पहाड़ियों में पहले पहल स्तनीवर्गी पशुओं के अनेक जीवाश्म पाये गये। इन में से अधिकाँश प्रजातियाँ अपवृत्त (Extinct) हो चुकी हैं। आजकल के पशुओं का इनसे उद्विकास तो हुआ होगा लेकिन वे इनसे बिल्कुल भिन्न हैं। २०० लाख (२० मिलियन) वर्षों के पहले के पशुओं का हमें इन जीवाश्मों के अध्ययन से पता चलता है। भारत की पहली स्तनीवर्गी प्राणी जिसके विषय में हम कुछ जानते हैं, एन्थराकोथरा (Anthracothera) वंश की "किरथारिया" नामक प्रजाति है जो कि देखने में बकरे की तरह रही होगी। इसकी अनेक और विभिन्न प्रजातियाँ भारत में बसी थीं, किन्तु इनका कोई भी पूर्ण जीवाश्म नहीं प्राप्त हुआ है। इसी के साथ भारत के वनों में पेलियोमेस्टोडोन (Paleomastodon) प्रजाति भी निवास करती थी। हाथी के पूर्वजों में "महाभीम हस्ती" या डैनोथेरियम (Dinotherium) नामक भयंकर जानवर भी था, जो कि पेलियोमेस्टोडोन (Paleomastodon) से कहीं विशाल था। इसके नीचे के जम्भ से निकलते हुए दो दन्त (Tusks) थे। यद्यपि यह पेलियोमेस्टोडोन से अधिक हाथी की ओर विकसित था फिर भी इसकी सूँड हाथी की तरह ज़मीन को नहीं छूती थीं। इसके दाँत इसके समकालीन प्रजातियों की उपेक्षा में अधिक पट्टदार (Plate like) थे। इसको चित्र 12 में देखिये।

टेलियोसेरास (Teleoceras) नामक एक गण्डक प्रजाति इस युग में थी, जो कि अपवृत्त हो गई है। यह छोटे से गाय के समान आकार की थी, और इसके छोटे छोटे मोटे मोटे पाँव थे। इसका पेट ज़मीन को छूता हुआ था। इसकी नाक के ऊपर एक सींग थी और मुँह में दो जोड़े दन्त (Tusks) थे। यह जीव बलूचिस्तान और पाकिस्तान की घाटियों में भटकता रहता था।
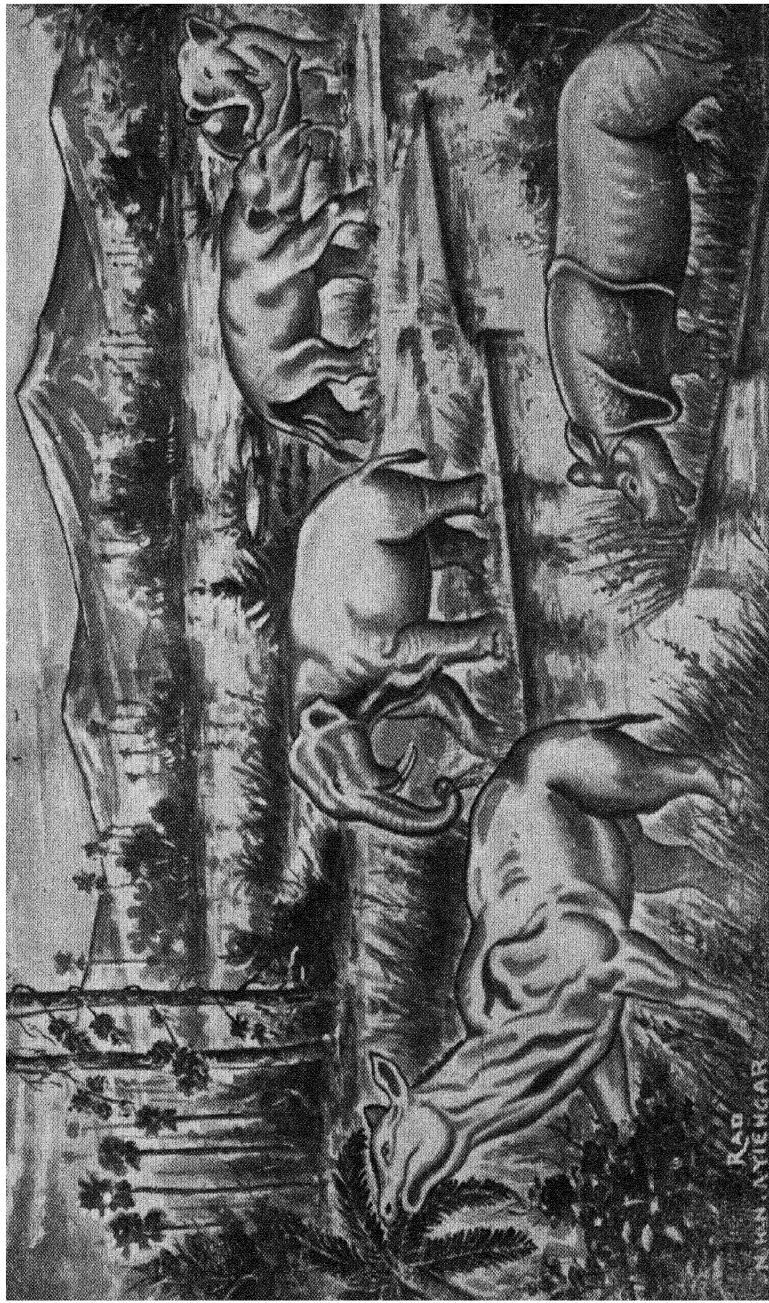
चित्र 12: लगभग दो करोड़ वर्ष पूर्व भारत में वनस्पति और थल जीव।

बलूचीथेरियम प्रजाति (Baluchitherium) इस काल में बलूचिस्तान में निवास करता था। इसके जीवाश्म को नापने से मालूम होता है कि यह जीव १४ फुट ऊँचा था, और मंगोलिया में पाया हुआ इसी प्रजाति का जीवाश्म १७ फुट ऊँचा था। इससे प्रकट होता है कि यह प्राचीन गण्डक हमारे हाथियों से भी स्थूल और भीषण था। मयोसीन युग में पृथ्वी के सब प्राणियों से यह अधिक विशाल था। नाक से पूँछ तक यह २५ फुट लम्बा था। इसका जीवाश्म सर ४ फुट लम्बा, और गर्दन ६ फुट लम्बा था, जोकि अन्य गण्डकों में नहीं होता है। इसके ऊपरी जम्भ से गण्डक की तरह दो दन्त बाहर को निकले हुए थे लेकिन नीचे के दन्त (Tusks) अन्दर की ओर धँसे थे। इसके अति स्थूल पाद ८ फुट ऊँचे थे। कोई आश्चर्य की बात नहीं कि यह भीषण पशु जीवन संघर्ष में अपने से सुडौल और मांसभक्षी प्रजातियों से हार गया।

बलूचिथेरियम प्रजाति को छेड़नेवाली माँसाहारियों के विषय में कुछ जानना चाहिये। इनमें मुख्य एमफिक्योन प्रजाति (Amphicyon) था, जिसका सिर कुत्ते की तरह था और शरीर भालू की तरह। इससे भयंकर एक बाघ जाति का जीव था, जिसका जम्भ मात्र मिला है। इस जम्भ और दाँतों को नापने से पता चलता है कि इसका परिमाण आज के बाघ (Tiger) का तिगुना होगा। इसके सिवा, सूअर, हैयेना (Hyena) इत्यादि के जीवाश्म मिलते है पर चिड़ियों और बन्दरों का कोई चिन्ह नहीं मिलता।

———

अध्याय २०

प्लैयोसीन संकाल

(Pliocene period)

१ करोड़ वर्ष पूर्व

हस्तियों का प्रव्रजन और विचित्र महाग्रीवः

प्लैयोसीन संकाल १२० लाख वर्षों की अवधि है, लेकिन संसार के भौगोलिक मानचित्र (Geographical map) में इसने कोई विशेष अन्तर नहीं देखा। बलूचिस्तान की मकान सीमा अब तक समुद्र के अन्तर्गत था। जिन प्रदेशों में प्राचीन सागरों का खारा पानी शेष रह गया था, उनमे अब स्वच्छ पानी भरने लगा। उत्तर पश्चिमी पाकिस्तान के पोत्वार प्रदेश में ऐसी एक नदी थी जिसमें ज्वार द्वारा (Tides) सागर से पानी आता रहता था। इसी समय हिमालय के पादों पर बिछी हुई महान घाटी से होते हुए अनेक नदियाँ पूर्व और पश्चिम की ओर निष्क्रम मार्ग ढूँढने लगीं। हिमालय से ये नदियाँ प्रचुर मात्रा में द्रव्य लाती थीं और इस घाटी में अवसादित करती थीं, यहाँ तक कि इस काल के अन्त में १५००० फुट घना साद और चिकनी मिट्टी का जलोढ़ निक्षेप विस्तृत था।

इस काल में जलवायु मंद थी और पशु पक्षियों की अभिवृद्धि के लिए उपयुक्त थी। हर जगह फूलदार वृक्ष उत्पन्न हुए। पहले की कंगुताल प्रजातियाँ क्षीण होने लगीं।

पशुः

इस काल में अनेक प्रजातियों के स्तनीवर्गीय पशुओं का उद्विकास हुआ। ये पशु हिमालय पहाड़ियों की आड़ में निवास करते थे। पूर्व में दहरा-दून से पश्चिम में बलूचिस्तान तक के महान मैदान में ये जानवर भटकते रहते थे। बलूचिस्तान उस काल में आज के जैसे शुष्क नहीं था
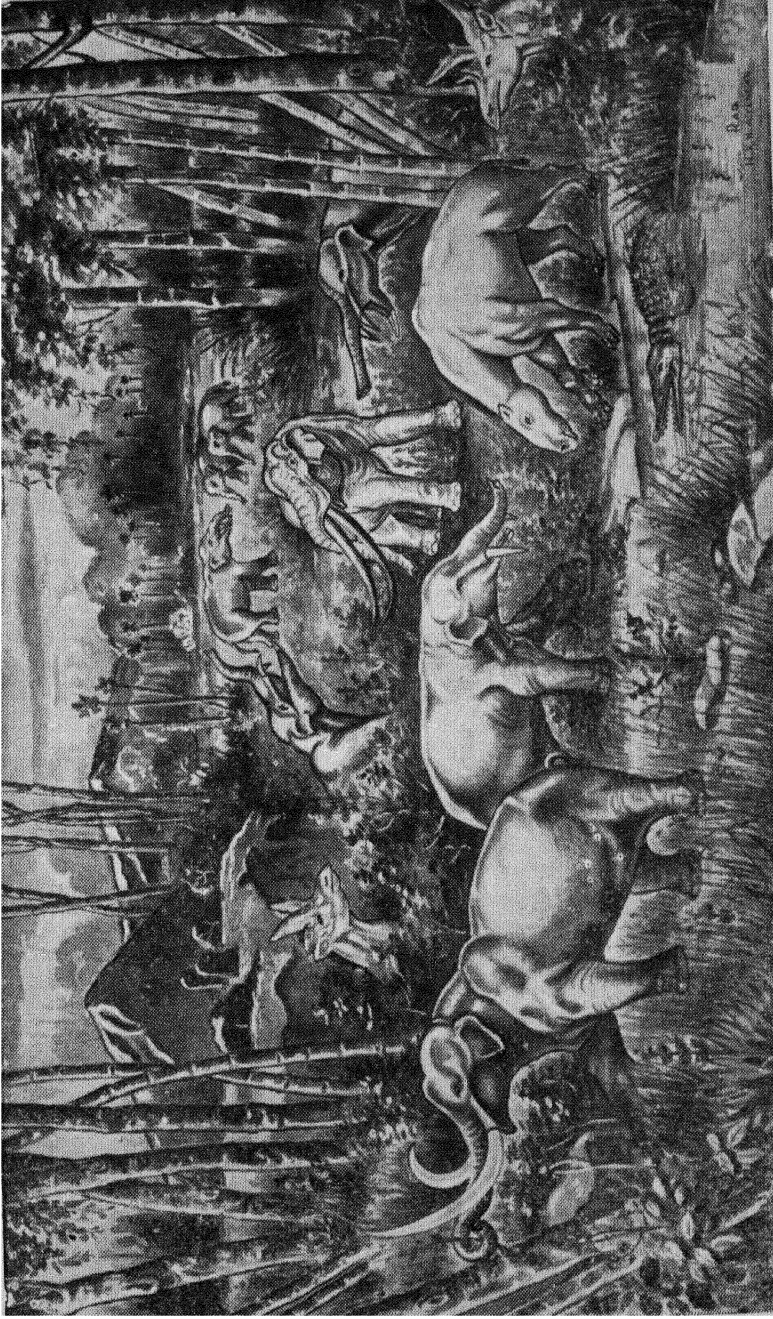
चित्र 13 : लगभग पचास लाख वर्ष पूर्व भारत के थल जीव।

और उधर घने घने जंगल थे जिनमें अनेक जीव बसे थे। (चित्र 13) भूवैज्ञनिकों के अनुसार ये जानवर इन्डोब्रह्म नदी के तट पर जीवित रहते थे। ये प्रजातियाँ संसार से लुप्त हो गई हैं और इनके जीवाश्मों को काल्पनिक आँखों से देखने से ही हमें १२० लाख वर्ष पूर्व के पशुओं का ज्ञान मिल सकता है। संभव है कि आप पूछेंगे कि इतने प्राचीन समय के विषय में जानने की क्या आवश्यकता है? इसके लिए यही उत्तर है कि मनुष्य में भगवान ने इतनी उत्सुकता दी है, कि वह सब प्रकार के ज्ञान प्राप्त करने के लिए आतुर रहता है, चाहे वह भूत काल का हो या भविष्य का। यदि ऐसा न होता तो हमारे पास न तो कोई विज्ञान (Science) होता, और न कोई दर्शन शास्त्र (Philosophy.)

ख़ैर अब सुनिये प्लैयोसीन युग के विचित्र प्राणियों के विषय में। सब से पहले हाथी के पूर्वजों के विषय में जानना चाहिये क्योंकि हाथी भारत में सर्वप्रिय है और आजकल हमारे प्रधान मंत्री इसे अपना शान्ति-दूत बनाकर अन्य देशों के बच्चों के मनोरंजन के लिए भेजते रहते हैं। आधुनिक हस्ती को एलिफस इण्डिकस" (Elephus indicus) का नाम दिया गया है, किन्तु प्राचीन काल में हाथी के लगभग दस विभिन्न प्रजातियाँ भारत ही में बसी हुई थीं।

हमें डैनोथेरियम (Dinotherium) के विषय में थोड़ा कुछ पता चला है। इसी के साथ अजीब से दाँतों की प्रजातियां बसी हुई थीं जिन्हें मेस्टो-डोन्ट (Mastodont) का नाम दिया गया है। इनके सर और दाँत बहुत ही विचित्र आकार के थे। एक प्रजाति के मेस्टोडोन्ट का मुंह चिड़ियों की चोंच की तरह बना हुआ था। इनका नाम 'रैनकोथेरियम" (Rhynchotherium) याने "चोंचदार पशु" रखा गया था। मुँह के दोनों तरफ़ इसके दो-दो दन्तों (tusks) के जोड़े थे। इसका ऊपरी जम्भ विस्तृत और नीचे का जम्भ अन्दर को धंसा हुआ था।

मेस्टोडोन्ट्स की दूसरी प्रजाति को ट्रैलोफोडोन (Trilophodon) नाम दिया गया है, क्योंकि इसके तीन कूट दाँत (Three ridged teeth) थे। इसके जीवाश्म के अध्ययन से पता चलता है कि यह जीव ८-१० फुट ऊँचा था, और इसका जम्भ आधुनिक हाथी की तरह नहीं बल्कि बहुत लम्बा था। इसके दो दो जोड़े दन्त थे जब कि आजकल के हाथियों में बस एक जोड़ा होता है। दूसरे मेस्टोडोन्ट प्रजाति के त्रकचित दन्त थे जिससे उसे सेरीडेन्टिनस (Serridentinus) कहते हैं। इसके अलावा छोटे जम्भ वाले अनेक प्रजाति के मेस्टोडोन्ट थे जोकि कुछ कुछ आधुनिक हाथियों के आकार के थे। किन्तु इनके भी दो जोड़े दन्त थे। इनका नाम सिन्कोनोलोफस (Synconolophus) रखा गया। जब इस प्रजाति के पशु बड़े हो जाते थे तब उनका एक जोड़ा दन्त लुप्त हो जाता था। इन सब प्रजातियों से अधिक विकसित हाथियों को स्टिगोडोन्टस् (Stegodonts) कहते हैं। इसके दाँत शंक्वाकार (conical) थीं।

इन सब मेस्टोडोन्ट प्रजातियों के अध्ययन के बाद हम ये पूछते हैं। कि इन का मूल स्थान क्या था? कहाँ से ये जीव सारे संसार में फैल गये? हाथी के विभिन्न प्रजातियों के जीवाश्म के अध्ययन करने से पता चलता है कि इनका उद्गम (Origin) स्थल दक्षिणी आफ्रिका में था। वहाँ से कुछ प्रजातियाँ उत्तर की ओर प्रव्रजन (emigrate) करके नील (Nile) नदी के तट में जाकर बस गईं। समय के साथ अन्य प्रजातियों के हस्थियों का उद्विकास हुआ। आदि नूतन युग के अन्त तक हाथियों के समान महान यात्री कोई प्रजाति नहीं था। एक प्रव्रजी हस्ती कुटुम्ब यूनान (Greece) में जा बसा। दूसरा एश्या महाद्वीप में पहुँचकर दो झुण्डों में विभाजित हुआ। एक झुण्ड बलूचिस्तान और भारत आ पहुँचा, दूसरा अत्यन्त विस्तृत सफर करते हुए उत्तरी अम्रीका (जो उन दिनों एश्या से जुड़ा था) में जा पहुँचा।

ये प्रजातियाँ हर देश में समृद्ध हुईं। भारत में ये ख़ास तौर से खुश रहीं। धीरे धीरे इन प्रजातियों से ही आधुनिक हाथियों का उद्विकास हुआ।

घोड़ों की भी एक दो प्रजातियाँ भारत में उत्पन्न हो चुकीं थीं। इनके पाँव में तीन उंगलियाँ थीं, जिनके मध्य की उंगली पर ही वे चलती थीं क्योंकि बाकी दो उंगलियाँ ज़मीन को नहीं छूती थीं।

गण्डक वंश की भी दो तीन प्रजातियाँ थीं। सूअर (चित्र 13) जाती की १२ प्रजातियाँ बसी हुई थीं जिनमें एक प्रजाति का मुँह और दाँत घोड़े की तरह थे। इनका नाम हिप्पोहियस (Hippohyus) है। इनमें कुछ जानवर बिल्ली की तरह छोटे छोटे थे और कुछ भालू की तरह बड़े बड़े।

एन्थराकोथेरा (Anthracothera) के पशु बहुत संख्या में बढ़ते गये। इनमें सब से बड़ा जीव आधुनिक गाय के बराबर था जो आप मानेंगे सूअर के लिए बड़ी नाप है।

इन सब जीवों से अधिक दिलचस्प महाग्रीवों के विषय में सुनिये। आपको पता ही होगा कि आजकल महाग्रीव (Giraffes) भारत के वनों में नहीं पाये जाते हैं, किन्तु १० लाख वर्षों के पूर्व वे भारत में हिमालय के आस पास और उत्तरी पंजाब में साधारणतः भटकते रहते थे। उस काल में लगभग ६ या ७ प्रजातियों के महाग्रीव भारत में थे जोकि आधुनिक महाग्रीव से बहुत कुछ भिन्न थे। इनके जीवाश्मों को भूवैज्ञानिकों ने भारती देवी देवताओं के नाम दिये। इस तरह से विष्णु-थेरियम (Vishnutherium), ब्रह्मथेरियम (Bramatherium) हैडेसपीथेरियम (Hydaspitherium), (झेलम का यूनानी नाम हैडसपीस था) और इन्द्रथेरियम (Indratherium) इत्यादि नाम दिये गये।

ब्रह्मथेरियम : (Bramatherium)

यह राक्षसी महाग्रीव अत्यन्त भीषण आकार का था। इसका सिर आज के महाग्रीव का दुगुना था और इसके दो जोड़े भयानक सींग थे।

इन सींगों में एक जोड़ा मुँह के पास ही निकला था। इसके दोनों जोड़े सींग सर के ऊपर मिलकर पृथक हो जाते थे, जिससे इस जानवर की सूरत अत्यन्त अजीब प्रतीत होती थी। इसमें विशेष बात तो यह थी कि इसकी गर्दन आजकल के महाग्रीवों की तरह दीर्घ नहीं वरन् बहुत ही छोटी और भारी थी। इसकी टाँग भी छोटी थीं। (चित्र 13)

हैडास्पीथेरियम (Hydaspitherium) या "झेलम नदी का महाग्रीव" एक और प्रजाति है। यह ब्रह्माथेरियम के बराबर बड़ा था। इसके चारों सींग जुड़े से थे जिससे वे दो सींगों की तरह दीखते थे। इसके पैर छोटे छोटे थे। इन्द्राथेरियम प्रजाति भी इसी प्रकार की थी लेकिन इसके सींग नहीं थे।

हिमालय के वनों में अनेक माँसाहारी पशु उत्पन्न हुए। इनमें मुख्य भालू, शेर, बाघ, पण्डक (Panda) उद्र, नेवला, तरक्षु (Hyaena) इत्यादि प्रजातियाँ थीं। इनमें अनेक प्रजातियों की कल्पना करना भी कठिन है क्योंकि उनके अपूर्ण जीवाश्म ही मिलते हैं। किन्तु इस काल के अत्यंत क्रूर बाघ के विषय में कुछ पता चला है। इसका नाम मेचेरोडस (Machaerodus) रखा गया है। इसके दाँत तीव्र और ४" लम्बे थे। यह जीव अत्यंत शक्तिशाली और भयानक था। वह अपने शिकार पर कूदकर अपने तीव्र दाँतों से उसे चीरकर एकदम उसे खा जाता था। इस युग का सब से भयंकर प्राणी यही था। इसके जीवाश्म से काल्पनिक चित्र पन्द्रह देखिये।

इसी संकाल में छोटे छोटे मृग थे जिनको मातृका मृग (Mouse deer) नाम दिया गया है। ये इतने छोटे छोटे थे कि इन्हें चूहे जैसा मृग नाम मिला। वानर वंश की भी अनेक प्रजातियाँ थीं जिनके जीवाश्म इतने टूटे फूटे हैं कि इनके आकार का हमें कुछ ज्ञान नहीं मिलता। इस समय की गाय या भैंस का कोई भी जीवाश्म हमको नहीं मिला है।

अध्याय २१

आदि मानव युग

(Human age)

१० लाख वर्ष पूर्व

महान हिम-अनुयुग और मानव का उद्विकास

प्रातिनूतन या प्लीसटोनीस संककाल (Pleistocene Period):

भूवैज्ञानिक इतिहास के तृतीय संकाल (Tertiary Period) का अन्त प्लैयोसीन युग के साथ हुआ। अब तुरीय संकाल (Quarternary Period) की ओर बढ़ते हैं। इसके पहले काण्ड को प्लीस्टोसीन अर्थात्
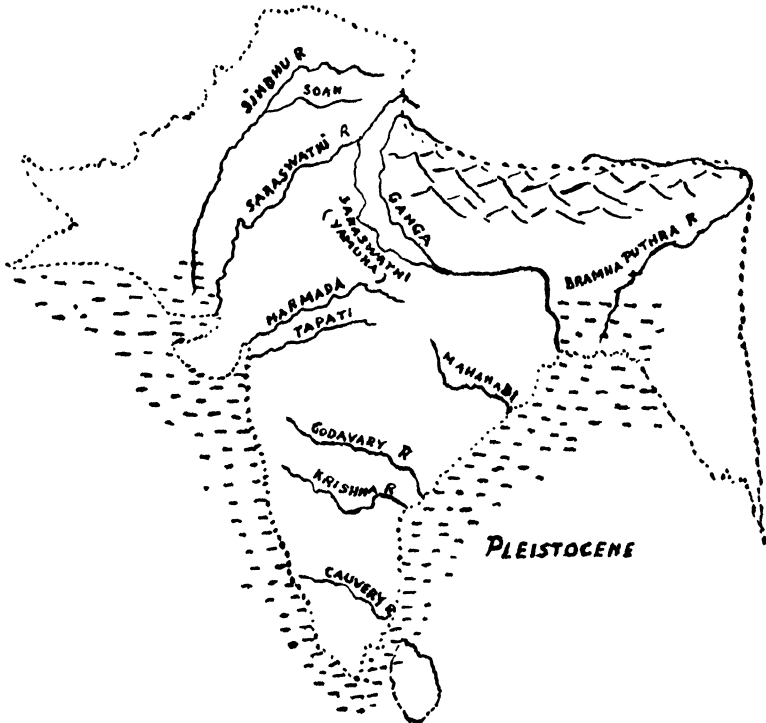
चित्र 14. पच्चीस हज़ार वर्ष पूर्व, भारत का मान चित्र

"नवीन" युग कहते हैं। इस काल को साधारणतः "महान हिम अनुयुग" (Great Ice Age) भी कह सकते हैं।

भारत में इस काल के पूर्व हिमालय का उच्छाय और अधिक बढ़ चुका था। प्लैयोसीन युग के महान भूकम्प (जिसके कारण हिमालय का अधिक उत्थान हो चुका था), के पश्चात् भारत के मानचित्र में कोई मुख्य भौगोलिक अन्तर नहीं हुआ। किन्तु हिमालय के उत्थान के साथ उसके पादों पर बिछी हुई उत्तरी घाटी अपने समस्त अवसादन (जो लाखों वर्षों में निक्षेपित हुई थी) के साथ उत्थित हो गयी। इसलिए इन्डो-ब्रह्म नदी का धीरे धीरे लोप होने लगा। तीन, चार लाख वर्षों से भारत की जलवायु सुगम और मंद होने लगी। (चित्र 14).

प्लीस्टोसीन संकाल लगभग लाख वर्षों की अवधि है, जिसका हमें ज्ञान इसीलिये आवश्यक है कि वह संसार के भूवैज्ञानिक (Geological history) इतिहास और मानव इतिहास (human history) के बीच संबंध कटि (Connecting Link) स्थापित करता है। सब से मुख्य बात यह है कि इसी संकाल में मनुष्य पहले पहल पृथ्वी पर उत्पन्न हुआ। हमें मनुष्य की उत्पत्ति का मूल स्थान, वहां से प्रव्रजन (emigration) और उसका सभ्यता की ओर उद्विकास इत्यादि के विषय में जानना अत्यंत लाभदायक होगा।

महान-हिम-अनुयुग (Great Ice Age)

प्लीस्टोसीन संकाल को हिम अनुयुग इसलिए कहते हैं कि इस काल में पृथ्वी के उत्तरी गोलार्ध (Northern hemisphere) में अत्यंत भीषण ठंड पड़ने लगा। हेलमुट-डी-टेरा, (Helmut de Terra) नामक वैज्ञानिक ने हिमानियों का भारत, अफ्रीका और यूरोप में अध्ययन किया। इनके अनुसार संसार के उत्तरी ध्रुव वृत्त (Arctic Circle) से उष्ण कटिबन्ध (Temperate Zone) तक पाँच विभिन्न शीत अवधियाँ पड़ती थीं। इन

शीत अवधियों को "हिम अनुयुग" (Glacial age) नाम दिया गया है। हर एक हिम अनुयुग के बीच एक उष्ण अवधि पड़ती थी जिसे "अन्तर-हिम-अनुयुग" (Inter glacial age) कहते हैं।

हर एक हिम अनुयुग में उत्तरी अम्रीका यूरप (आल्प्स् और भारत के पर्वती प्रदेशों में भीषण सर्दी पड़ती थी। हिमालय पर्वत माला सॉंवत्सर (Perennially) बर्फ़ से ढ़की रहती थी। असंख्य हिमानियाँ (glaciers) पर्वत के शिखर से उतरकर समुद्र से ५००० फुट उच्छाय के स्थलों तक बह आती थीं। अपने अवरोहण में ये हिमानियाँ पर्वत के चट्टानों पर रास्ता काटती हुई आती थीं और अपने साथ गण्डाश्म (Boulders) चट्टान (rock), कंकर (Gravel), साद, इत्यादि लाकर नीचे की घाटियों में एकत्रित करती थीं। हिमानियों द्वारा अवसादित द्रव्य को हिमोड़ निक्षेप या मोरैन (Moraine) कहते हैं। इस प्रकार हिमानियों द्वारा लाये हुए गण्डाश्म घिस घिस कर कभी कभी बिल्कुल चिपटे (Flattened) हो जाते थे। ये सामग्री जोकि हिमानियों की सीमा पर (on the glacial margin) प्रवाहित होकर उतरती थीं उन्हें लेटरल मोरैन (Lateral moraine) कहते हैं। जब हिमानी अपनी यात्रा के अन्त में पहुँचती थी तब वह अपने साथ प्रवाहित समस्त द्रव्य को व्यजन आकार (Fan shape) में अवसादित करती थी। इस निक्षेप को टर्मिनल मोरैन (terminal moraine) कहते हैं। काश्मीर के गुलमर्ग और फेरोज़पुरनाला में आज भी ये हिमोढ़ निक्षेप हम देख सकते हैं।

भारत वर्ष के उष्ण कटिबंध में होने के कारण हिमालय के सिवा अन्य घाटियों और समतट भूमि में हिम अनुयुगों का जलवायु पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा इसीलिए हिम अनुयुगों की अवधि को समतट प्रदेशों में प्लूवियल (Pluvial) और इन्टर-प्लूवियल (Inter-Pluvial) कहते हैं।

हिम अनुयुगों में हिमालय से लाये गये हिमोढ़ का क्या होता था? वे नदियों के साथ प्रवाहित होकर नीचे की घाटियों में अवसादित

कर दी जाती थी। इनका फिर क्या होता था? ठंड के समय नदियों में कम पानी होने के कारण वे इन महान गण्डाश्मों का परिवहत (Transport) नहीं कर सकती थी और अपनी ही गोद में रख लेती थी। फिर अन्तर-हिम-अनुयुग के समय, ठंड के बीतने पर गर्मी और वर्षा पड़ने लगती थी जिससे नदियाँ वेग से बहती थीं और अपने आन्तरिक स्तरों में अवसादित गण्डाश्मों को काटती (erode) जातीं थीं। इसी प्रकार अपघोषित गंडाश्मों पर नदियों के उत्तलनों की संरचना हो जाती थी (Striated structures were made on the boulders).

इस तरह से आप समझेंगे कि पाँच हिम अनुयुगों में, पाँच बार हिमोढ़ निक्षेप नदियों के फर्शों में निक्षेपित थे। फिर अन्तर-हिम-अनुयुगों में यह निक्षेप नदियों के प्रवाह से अपघोषित होकर विभिन्न उत्तलों में परिणत होते थे। इस से प्रकट होता है कि उत्तलनों की संरचना (Structure of terraces) और हिम-अनुयुगों में काफी संबंध है। कभी कभी हिमोढ़ निक्षेप (Glacial moraine) और नदी उत्तलन (River terraces) पास पास पाये गये हैं। आपको याद होगा कि जैव और अजैव निक्षेप नदियों में तिथ्यानुसार स्तरों में अवसादित होती थीं। किन्तु इन उत्तलनों की विशेषता यह है कि प्रथम उत्तलन सब से ऊपरी स्तर पर पाया जाता है और अन्तिम उत्तलन सब से नीचे के स्तरों में होते हैं।

भौमिकीय तिथिपत्री (Geological Calender) :

इसी उत्तल संहिति से भौमिकीय तिथिपत्री बनाई जा सकती है। ये उत्तलन काश्मीर, पंजाब, सिंध, नर्मदा की घाटी, मदरास इत्यादि स्थानों में पाये जाते हैं। इनमें कभी कभी मनुष्य के बनाये हुए अनलाश्म यन्त्र (Flint Implements) पाये जाते हैं। इस काल का कोई भी मानव जीवाश्म न मिलने के कारण, हमें इन्हीं यन्त्रों से भारत के प्राचीन मनुष्य

के जीवन का कुछ अन्दाज़ मिलता है। अमेरीका और यूरोप में हिम अनुयुगों का पूरा पूरा अध्ययन हो चुका है। भारत में जो कुछ अपूर्ण अभिलेख पाये गये हैं वे अमेरीका और यूरोप के अभिलेखों के अनुरुप है।

प्लीस्टोसीन संकाल में सारे संसार की हिमानीयता कोई अनन्य (Unique) घटना नहीं थी। लगभग ५० करोड़ वर्ष पूर्व केम्ब्रियन युग (Cambrian age) में भारत में ऐसा ही एक हिम-अनुयुग व्यतीत हुआ। फिर ३० करोड़ वर्ष पूर्व कार्बोनिफेरस (Carboniferous) युग में भी भारत कुछ काल तक हिमानियों से ढ़का था। उस काल में आरावली पर्वत सबसे ऊँचा था और हिमानियाँ इसके शिखरों से उतर कर नदियों में अपने हिमोढ़ निक्षेप को प्रवाहित करती थीं जोकि कभी कभी साल्ट रेंज तक आ पहुँचती थी। हिमानियों द्वारा लाये हुए गण्डाश्म, बिहार, उड़ीसा, बंगाल, मध्य प्रदेश आदि विभिन्न स्थलों में पाये गये हैं।

इधर आप प्रश्न करेंगे कि क्या हिम-अनुयुगों का कोई वैज्ञानिक कारण है, या इनका होना बिल्कुल आकस्मिक है? एक सिद्धान्त के अनुसार पृथ्वी विभिन्न कालों में विश्व के अत्यंत शीतल स्थलों से होती हुई निकलती है। इस कारण पृथ्वी के अनेक भाग हिम से ढक जाते हैं। वैज्ञानिक इस सिद्धान्त को नहीं मानते, क्योंकि इसमें दो विषयों का स्पष्टीकरण नहीं है। पहला यह कि यदि हिम अनुयुग में पृथ्वी ऐसे शीत स्थलों से होती हुई भ्रमण करती है तो समस्त भूतट क्यों हिम से नहीं आच्छादित होता है? दूसरी बात यह है, कि हर एक हिम अनुयुग के साथ साथ उष्ण अन्तर-हिम-अनुयुग क्यों पड़ते हैं?

इस संबंध में दूसरी धारणा के अनुसार समय समय पर पृथ्वी के दोनों ध्रुवीय कटिबंधों में ऐसे विवर्तन (Shifts) होते हैं जिससे संसार के अनेक प्रदेश सूर्य से अधिक दूरी पर रह जाते हैं। इन देशों में सूर्य की

प्रकाश विकिरण (Radiation) कम होने के कारण बहुत दिनों तक ठंड और कम दिनों तक गर्मी पड़ती है। इस सिद्धान्त में भी विवरण नहीं किया जाता है कि निश्चित अवधियों पर ही क्यों हिम अनुयुग पड़ते थे और उनके पश्चात एकान्तरिक उष्ण अवधियाँ क्यों पड़ती थीं? क्या ध्रुवीय कटिबंधों में निश्चित समय पर विवर्तन होता था?

तीसरा सिद्धान्त है कि पृथ्वी का अक्ष (Orbit) सूर्य की ओर कुछ दिनों मुड़ता है और कुछ दिनों दूर हो जाता है। गर्मी और ठंड का पड़ना इसी घटना पर निर्भर है। इस विचार के लिए पर्याप्त प्रमाण नहीं मिलते। अनेक वैज्ञानिकों के अनुसार जब पृथ्वी पर किसी भी प्रदेश का उत्थान होता है, तब उसका तापाँश (Temperature) आप ही घट जाता है। सच है कि हिमालय के उत्थान के बाद हिमानी युग पड़ने लगे, किन्तु हर एक हिम-अनुयुग के पहले हिमालय का उत्थान क्यों नहीं हुआ?

कोई भी सिद्धान्त हमारे सवालों को पूरी तरह नहीं हल करता है परन्तु हिमालय के उत्थान के साथ हिम अनुयुगों का आरंभ होने से प्रतीत होता है कि इन दो घटनाओं में कुछ संबंध हो सकता है।

पहला हिम अनुयुग करीब ६ लाख वर्ष पूर्व प्लीस्टोसीन के उदार काण्ड में प्रारंभ हुआ। इस काल में हिमालय पर अत्यन्त ठंड पड़ने लगी। संभव है कि हिम अनुयुगों में सब से कठोर ठंड इसी समय होगी। हिम की रेखा समुद्र से ५००० फुट से अधिक नीचे उतरती जा रही थी। हिमालय का परिमाण (dimension) या विमा आजकल के जितना नहीं था। पंजाब और काश्मीर के आन्तरिक अनेक पर्वत उत्पन्न नहीं हुए थे, या आज के उत्थान पर नहीं पहुँचे थे। प्लीस्टोसीन काल में पंजाब और

चित्र 15: सूचि:—इस चित्र में प्लीस्टोसीन संकाल के शिवाथेरियम, स्टेगोडोन, और कोलोसों-चोलेस का दाखय। आधुनिक काल में भारत के पशु प्रजातियाँ।

काश्मीर प्रांतों को विभाजित करनेवाली पीर-पंजाल पर्वत श्रेणी की उत्पत्ति नहीं हुई थी। काश्मीर की कुसुमित घाटी आज के उच्छाय (५००० फुट) पर नहीं बसी थी।

हिमालय के पर्वतों से असंख्य हिमानियाँ उतरती रहती थीं। परन्तु कभी कभी मार्ग में बाधा डालते हुए, अनेक बड़े बड़े बर्फ़ीले गण्डाश्म खड़े हो जाते थे जिनसे टकरा कर ये हिमानियाँ छोटी आन्तरिक झीलों में परिणत होती थीं। ये झील कभी कभी फूट जातीं थीं और दूर-दूर तक पत्थर और चट्टान फेंकती थीं जिन्हें भूवैज्ञानिक "अपोढ़" (erratics) कहते हैं। आजकल एक अपोढ़ उत्तर दक्षिणी पाकिस्तान के शैख-बुद्धीन पहाड़ियों और खौर तेल क्षेत्र में देखे जा सकते हैं।

प्रथम हिम अनुयुग में भारत के समतट प्रदेश और घाटियों में सम-शीतोष्ण जलवायु थी। इन्डो-ब्रह्म नदी यदि इस काल में बही हो तो उसका ओजस् बहुत कुछ कम हो चुका था। हिमालय में अत्यन्त ठंड पड़ने के कारण अनेक पशु प्रजातियों का नाश होने लगा। इनके उत्तर-जीवी (Surviving) प्राणियों में एलिफस इंडिकस (Elephas indicus) या आधुनिक हाथी के पूर्वज भी थे। जल हस्ती (Hippopotamus) बाघ, पुरुषाभ वानर (Anthropoid ape) और सूअर इत्यादि प्रजातियाँ बच गईं और दक्षिण में नर्मदा के उष्ण घाटी की ओर प्रव्रजित हुईं। (चित्र 15).

मनुष्य का आगमन:

यद्यपि प्रथम हिम अनुयुग में भारत में मनुष्य की उपस्थिति का कोई चिन्ह नहीं मिलता फिर भी संसार के अन्य स्थलों में उसका आगमन हो चुका था। पहले पहल मनुष्य जीवाश्म भारत द्वीप समूह (East indies) के जावा प्रांत में मिलता है। जावा का आध्य-मनुष्य जंगलों में भटकता था और अपरिष्कृत अनलाश्म चत्रों (Crude flint Implements)

को बनाकर उनसे शिकार करता था, और धरती से पौधों को ज़ड के साथ खोदकर खाता था। यह कृषि के विषय में कुछ नहीं जानता था। इन जीवाश्मों से पता चलता है कि मनुष्य संसार में १० लाख वर्ष पूर्व उत्पन्न हो चुका था।

अब यह प्रश्न उठता है कि मनुष्य का पूर्व इतिहास क्या था? यह उद्विकास (evolution) जीवित और निर्जीव तत्वों (Elements) में एक ही सा है। इसकी तुलना विश्व में सौर संहित की उत्पत्ति और विकास से किया जाता है। डाक्टर हक्सली के अनुसार जिस प्रकार अनेक परिवर्तनों के बाद नीहारीका (Nebula) से पृथ्वी स्वयं बनी उसी प्रकार परस-समूह या प्रोटोप्लाज़म (Protoplasm) से जीवित प्राणी विभिन्न श्रेणियों से होते हुए अन्त में एक जीवाणु (Germ plasm) में परिणत होती है।

मनुष्य का उद्गम :

लोक धारणा में मनुष्य की उत्पत्ति ईश्वर ने किसी निश्चित समय समस्त पशुओं के साथ की। हिन्दू धर्म के अनुसार ब्रह्म स्वयं उत्पन्न हुआ और फिर ईश्वर या ब्रह्मा के रूप में उसने विश्व की रचना की और उसे देवता, राक्षस, मनुष्य, गन्धर्व, किन्नर और पशु पक्षियों से आबाद किया। ईसाई मत के अनुसार ईश्वर ने संसार की उत्पत्ति के बाद अपने ही स्वरूप के सदृश, मनुष्य को बनाया। आदम और ईव (Adam and Eve) सारे मनुष्य जाति के पूर्वज माने गये।

इसी प्रकार कुरान शरीफ़ में भी कहा गया है कि अल्लाह ने पहले चिकनी मिट्टी में मनुष्य का रूप रचा, फिर उसके लिए एक जीवाणु को जाग्रत किया फिर माँसहड्डी के शरीर को बनाकर सब को मिलाकर मनुष्य की तैयारी की।

ये सब धार्मिक दृष्टिकोण के विचार हैं, अब हम वैज्ञानिक दृष्टिकोण को समझें और फिर अपनी इच्छा के अनुसार विश्वास करें।

पहले के पृष्ठों में हमने ५० करोड़ वर्ष पूर्व के जीवाश्मों का अध्ययन किया। इससे हमें अंगीय जीवों (organic life) की उत्पत्ति और विकास का कुछ ज्ञान प्राप्त हुआ। पहले ऊँची श्रेणी के पृष्ठ वंशी जीवों में सब से सरल मीन जाति के जीवाश्म लगभग ४० करोड़ वर्ष के ऑर्डोविचियन पात्रों (Ordovician beds) में मिलते हैं। इस मीन जाति का करोड़ों वर्षों तक उद्विकास हुआ और इसकी कुछ प्रजातियाँ भूमि पर भी आ बसीं। इन्हें "मिट्टी की मछली" (Dipnoi) का नाम दिया गया है। इन में कुछ जीवों ने सैल्यूरियन युग (Silurian age) में साँस लेने के लिए अपने अन्दर फुप्फुस उत्पन्न किये। इसके उत्तरवर्ती डेवोनियन युग (Devonian Period) में एक नयी प्रजाति के पृष्ठवंशीय जीव जिन्हें उभयचर (Amphibian) कहते हैं, उत्पन्न हुए जो कि भूमि और जल दोनों में निवास कर सकते थे। इन उभयचरों का मूल प्रतिनिधि (मेंढ़क वंश के थे) और कुछ कुछ मीन के ही आकार के थे। इन उभयचरों को भूमि का नया वातावरण पसन्द नहीं आया इसलिए इन्होंने लाखों वर्षों में अपने शरीर में उपयुक्त अंगों का उद्विकास किया। इन्हीं को सरीसृप (reptile) कहते हैं। सरीसृप प्रजाति की संख्या बढ़ती गई और पहले के साधारण उभयचर अपक्षीण होते गये। यह सब लगभग आठ करोड़ वर्ष पूर्व हुआ। इसके उत्तरवर्ती त्रियास (Trias) और जुरासिक युगों (Jurassic age) में लगभग दो करोड़ वर्ष पूर्व, सरीसृप प्रजाति संसार में प्रबल हुई। फिर करीब एक करोड़ दो सौ लाख वर्ष पूर्व आर्कियोपट्रिक्स पक्षी प्रजाति (Archaeoptryx) नामक सरीसृप वंशीय पक्षी उत्पन्न हुई। इसी के समकालीन अनेक स्तनीवर्गीय सरीसृप और स्तनीवर्गीय पशु (Mammals and mammalian reptiles) सात-आठ सौ लाख वर्ष पूर्व उत्पन्न हुए। इस अध्ययन से प्रकट होता है कि सब से सरल (Simple forms) मीन जाति से उभयचर, और इनसे सरीसृप और फिर पक्षी और स्तनीवर्गीय प्रजातियों का उद्विकास

हुआ। यह उद्विकास सौ या हज़ार वर्षों में नहीं बल्कि ३०-४० करोड़ वर्षों में हुआ। साधारण मीन से मनुष्य का उद्विकास कितनी रहस्यमय (mysterious) और विचित्र कहानी है ! जिस प्रकार मनुष्य ने पहले छोटे छोटे आखेट के यन्त्र बनाये, फिर आगे बढ़ते बढ़ते अनेक मशीनो का आविष्कार किया और आज एटोमिक एनर्जी (Atomic energy) के साथ खेलने लगा, उसी प्रकार किन्तु कहीं विशाल मात्रा में प्रकृति ने करोड़ों वर्षों तक अंगीय जीवों के साथ संपरिक्षण (Experiment) किये, और अन्त में मनुष्य जैसे बुद्धिमान प्राणी को उत्पन्न किया। भविष्य में मायावी प्रकृति और किन किन प्रजातियों को उत्पन्न करेगी हम नहीं जानते। किन्तु हमें इतना मालूम है कि प्रकृति की प्रेरणा उन्नति की ओर ही रहती है, इसलिए हमारे उत्तरवर्ती युगों में आनेवाले प्राणी हम से उच्च श्रेणी के ही रहेंगे।

संभव है कि हमारे पूर्वजों ने किसी प्रकार के अंगीय उद्विकास (Organic evolution) की कल्पना की हो। हमारे शास्त्रों के अनुसार ईश्वर ने दशावतार लिए; पहले अवतार में ईश्वर ने मत्स्य या मीन का रुप लिया, अगले जन्म में उन्होंने कूर्म (सरीसृप) का रुप धारण किया, तीसरे अवतार में वे वराह (स्तनीवर्गी जीव) बने; चौथे में नर-सिंह, याने आधे मानव आधे सिंह (पुरुषाभ बानर) का अवतार लिया, पाँचवें में उन्होंने वामन या बौने (Pig my) का शरीर लिया; छठे में परशुराम. यद्यपि परशुराम मनुष्य के ही आकार के थे फिर भी उनमें काफ़ी पशुत्व था जिससे वे एक राजा के अपराध के लिए सारे क्षत्रियों का नाश करने के लिए तुले हुए थे। फिर सातवें अवतार में भगवान ने रामचन्द्र जैसे आदर्श पुरुष का जन्म लिया जिसमें बुद्धि और शारीरिक शक्ति का समान उद्विकास हो गया था। आठवाँ अवतार श्रीकृष्ण में ईश्वर ने आध्यात्मिक विकास की महिमा दिखाई, फिर नवें अवतार बुद्ध देव में करुणा का विकास दिखाया। अब हम कल्कि अवतार के लिए रुके हैं। शास्त्रों में

कलियुग के अन्त में प्रलय की भविष्यद्वाणी की गई है, और यदि एटोमिक बमों (Atom bombs) का प्रतिशोध नहीं किया जाता तो मनुष्य जाति का प्रलय किसी प्रकार असंभव नहीं है। इन दशावतारों की कहानी में मत्स्य से बुद्ध जैसे महापुरुष के उद्विकास की कल्पना पाई जाती है।

यद्यपि सर्व साधारण की धारणा में मनुष्य को ईश्वर ने एकाएक अपनी ही मूर्ति के सदृश बनाया, वैज्ञानिक अध्ययन से पता चलता है कि मनुष्य इस तरह एकाएक नहीं बना बल्कि लाखों वर्षों में किसी सरल प्रजाति से उद्विकसित हुआ। फिर वैज्ञानिकों ने यह प्रश्न पूछा कि मनुष्य का मूल पूर्वज किस प्रजाति का जीव था? ऐसे पूर्वज में कुछ न कुछ मानवीय गुण होने चाहिये। ये गुण क्या थे? एक तो मनुष्य का मूल पूर्वज पृष्ठवंशी (Vertebrate) रहा होगा और उसके शरीर पर बाल रहे होंगे. वह स्तनीवर्गी प्राणी था और अपने संतान को अंडे द्वारा नहीं उत्पन्न करता था; द्विपद न होने से भी उसमें अपने पिछले पैरों पर कुछ समय के लिए खड़े रहने की योग्यता होनी चाहिये थी। यदि आप ऐसा जीव को किसी प्राणी-संग्रहालय (२००) में खोजे तो मेध्य वानर (Chimpanzee) या साधारण कपि पर ही आप हाथ लगावेंगे।

चार्लस् डारविन नामक महान प्रकृतिविज्ञ ने १०० वर्ष पूर्व इसी धारणा को घोषित किया। उसने कहा कि मनुष्य बन्दरों का ही वंशज है। इससे उस ज़माने के इंगलैण्ड में बहुत हलचल मच गई क्योंकि जन साधारण को ऐसी बात पसन्द नहीं आई। फिर ऐसा सिद्धान्त उनके धार्मिक विचारों के बिलकुल विपरीत था, और उन्होंने डारविन को बहुत बुराभला कहा। आज सभी धर्म के लोग समझने लगें है कि चाहे ईश्वर ने सृष्टि की रचना एक क्षण में की, या करोड़ों वर्षों में, उसकी महिमा तनिक भी नहीं घटती है; और न विज्ञान का ध्येय धर्म पर धावा

बोलना ही है। आजकल वानरों का जीवाश्म और मानवीय भ्रूण विज्ञान (Human embryology) के अध्ययन से डारविन के सिद्धान्त को कुछ अंतरों के साथ मान लिया जाता है।

मनुष्य-पूर्वज-प्रजातियों के अपूर्ण जीवाश्म ही प्राप्त हुए हैं। इसलिए उसके उद्विकास का ज्ञान अधूरा ही रह गया है। पर्याप्त अभिलेख न मिलने के कारण मनुष्य के उद्भव का श्रृंखला बद्ध इतिहास बनाना और भी अधिक कठिन हो गया है। प्लीस्टोसीन युग के पहले मनुष्य या उसके पूर्वजों की उपस्थिति के कोई चिन्ह नहीं मिलते। फिर भी जो कुछ जीवाश्म मिले हैं उनके अध्ययन से प्रसिद्ध भूवैज्ञानिकों ने मनुष्य के उद्विकास का इतिहास निश्चित किया जो कि अधिकाँश मात्रा में उचित ही माना जाता है।

मनुष्य के उद्विकास को समझने के लिए उसके मूल पूर्वज नरवानरों (Primates) के विषय में कुछ जानना आवश्यक है क्योंकि मनुष्य नर वानर गणों की एक प्रजाति से ही उद्विकसित है। यह उद्विकास प्लीस्टोसीन युग के आरंभ से ही होता चला आया। आजकल के बन्दर, कपि, इत्यादि भी नर वानरों की प्रजातियाँ हैं। इनके अध्ययन से भी हम कुछ सीमा तक सीख सकते हैं। मनुष्य के उद्विकास वृक्ष इस प्रकार है :—
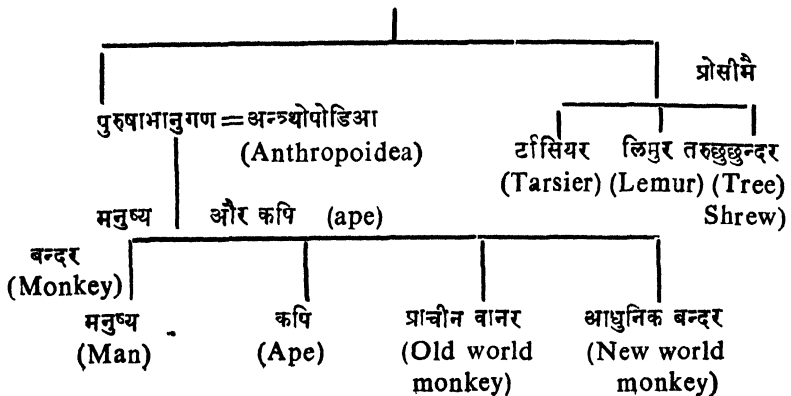
ऊपर लिखित सारिणी के अनुसार नरवानरों को प्रायः दो प्रजातियों में विभाजित करते हैं। पहले पुरुषाभ वानरों से मनुष्य और बन्दरों का उद्विकास हुआ। दूसरी प्रजाति "प्रोसीमै" (Prosimii) से टारिसयर, लिमुर, तरुछुछुन्दर (Tree shrew) इत्यादि का विकास हुआ। परन्तु ये जीव बन्दरों से तनिक भी नहीं मिलते। इनकी संख्या बहुत ही कम है। किन्तु इनका अध्ययन इसीलिये आवश्यक है कि ये नर वानर वंश के हैं और प्राचीन युगों से अपने आकार में किसी प्रकार के परिवर्तन के बिना चलते आये हैं। इनमें सब से प्राचीन प्रजाति तरु छुछुन्दर (Tree shrew) की है। यह गिलहरी की तरह है पर इसके नख बन्दर के जैसे हैं। इसकी आधुनिक प्रजाति का नाम "तुपाइया" (Tupaia) है। यह जाहक (Hedge hog) की तरह कीड़े मकोड़ों को ही खाती है।

नीच श्रेणी के नर वानरों और पुरुषाभ जैसे ऊँचे वर्ग के मध्य में लिमुर (Lemur) प्रजाति का स्थान है। इनके आधुनिक वंशजों को (टॉसियस) भी कहते हैं। यह एक छोटा सा जीव है जोकि अन्धेरे में पेडों में छिपा रहता है। इसके शरीर की नाप से इसका मस्तिष्क बहुत कुछ बढ़ा हुआ है। यह अपने छोटे छोटे पैरों से कूद फाँग (hop) कर चलता है। इसकी बड़ी बड़ी आँखें हैं। इसके मुख में हम बन्दर, कपि और मनुष्य के चेहरों की झलक पाते हैं। टॉसियर की लम्बी सी पूँछ होती है जो ईश्वर की कृपा से मनुष्य में नहीं पाई जाती. लिमुर अधिकांश मेडेगासकर (Madagascar) द्वीपों में पाये जाते हैं। लोरिस (Loris) नामक एक और जानवर है जिसका मस्तिष्क भी विकसित है।

अच्छा, तो अब प्राचीन और आधुनिक बन्दरों के विषय में कुछ जानना चाहिये। प्राचीन, उन प्रजातियों को कहते हैं जोकि एश्या यूरोप, और अफ्रीका में पाये जाते हैं, और आधुनिक वह जोकि दक्षिणी अफ्रीका

के निवासी हैं। इनमें बस यही अन्तर है कि प्राचीन प्रजाति के नासिका-रंध्र (Nasal opening) पास पास हैं, और अम्रीकी प्रजाति के दूर दूर हैं। प्राचीन वानरों में अनेक जीव अपने पैरों के तलुओं पर चलते हैं। कुछ प्रजातियाँ पेड़ों पर ही निवास करती हैं। कपि कन्द (Baboon) एक ऐसी प्रजाति है जो अपने गालों की थैलियों में खाना रखती हैं। भारत में लाल बन्दर (Macacus) पाया जाता है। काले लंगूर भी पाये जाते हैं जिनकी पतली पतली और लम्बी सी पूँछ होती है। रामायण के हनुमान जी इसी वंश के समझे जाते हैं।

वानरों की मुख्य प्रजातियो को शाखा वानर (Gibbon) मेध्यवानर (Chimpanzee) भीम वानर (Gorrilla) और वन-मानुष (Orang utan) कहते हैं। इनकी हड्डियों की बनावट बहुत कुछ मनुष्य के से मिलती हैं। इनके हाथ मनुष्य के हाथों से बड़ी और लम्बी उंगलियों वाले हैं। इनके पैर चलने के अलावा पेड़ के डालों को हथियाने (Grasp) के काम में भी आते हैं। इनमें सब से छोटी प्रजाति 'शाखा वानर' है जोकि घंटों तक पेड़ की शाखा को पकड़कर लटकती हैं। यद्यपि यह पेड़ों में ही बसता है, फिर भी यह भूमि पर दो पैरों पर खड़े होकर चल सकता है, और ऊपरी पादों (Limbs) को संतुलन (Balance) के लिए उपयोग करता है। इससे अधिक उद्विकसित, बोरनियो और सुमात्रा की वनमानुष प्रजाति है। इसका मस्तिष्क अधिक उन्नत है। यह जीव दो पैरों पर कुछ अकुशलता के साथ चल सकता है। यह करीब ५ फुट ऊँचा है। भीम वानर या गोरिला (Gorilla) और मेध्य वानर चिम्पेनज़ी (Chimpanzee) मिलते जुलते हैं। इनका आकार बड़ा होता है। कभी कभी गोरिला मनुष्य की तरह ६ फुट की ऊँचाई तक बढ जाता है। अन्य पुरुषाभगणों से, इनके हाथ छोटे और पैर लम्बे होते हैं। ये दोनों प्रजातियाँ अधिकतर भूमि पर ही रहती हैं, और अपने चारों पैरों पर ही चलती है, लेकिन इनमें

दो पैरों पर ही चलने की योग्यता पाई जाती है। गोरिला की बुद्धि को ६०० सी. सी. (600 C. C.) और चिम्पेनज़ी की ५०० सी. सी. (500 C. C.) नापा गया है। इनके दाँत मनुष्य के से बहुत बड़े हैं।

इन सब से पता है कि वानरों और मनुष्य में अनेक गुण एक से ही हैं। फिर इनमें अन्तर क्या क्या हैं?

१. गोरिला के सिवा और सब बन्दरों से मनुष्य का आकार बड़ा है।
२. मनुष्य का पृष्ठ अच्छी तरह बना है जिससे वह सारा भार दो पैरों पर डाल सकता है।
३. उसकी करोटि (Skull) महीन (Thin) है और कपियों की तरह मोटा नही है।
४. मस्तिष्क विकास और बुद्धि बल में वानरों में सब से अधिक ६०० सी. सी. माना गया है, एक मूर्ख मनुष्य में भी ८०० सी. सी. से कम नहीं होता है।
५. मनुष्य का चेहरा सीधाई पर प्रक्षेपित है (Projected and erect) पर वानरों में पीछे की ओर प्रतिसारी (Receding prehead) रहता है।
६. नाक की हड्डी मनुष्य में प्रमुख रहती है, वामरों में नहीं।
७. वानरों का जम्भ आगे की ओर प्रक्षेपित (Projecting) रहता है मनुष्य में नहीं, और बोलने की कोई योग्यता वानरों में नही होती।
८. वानरों में आँखों के ऊपर एक भारी हड्डी आधिसारित रहती है, जो मनुष्य में नहीं पाई जाती है।
९. वानरों के शव दन्त आगे को निकले रहा है, मनुष्य में नहीं।

१०. वानरों के गालों के पास बड़े बड़े दाँत होते हैं जो मनुष्य में नहीं होते।

११. वानरों के जम्भ मनुष्य की तरह अर्धचन्द्रिय (Hyperbolic) नहीं।

१२. मनुष्य का नितम्ब हड्डी चौड़ा होता है, वानरों में नहीं।

१३. वानरों के हाथ बड़े बड़े और लम्बी उंगलियोंवाले हैं और मनुष्य की तरह इनमें अंगूठी नहीं होते हैं।

१४. यद्यपि वानर दो पैरों' पर चल सकते हैं फिर भी मनुष्य की तरह द्विपद नहीं कहला सकते।

इन विभिन्न गुणों को याद रखते हुए यदि प्राचीन वानर जीवाश्मों का अध्ययन किया जाय तो मनुष्य के उद्विकास की कथा कुछ हद तक स्पष्ठ हो जायेगी। सच है कि ऐसे जीवाश्म बहुत ही कम मिलते हैं, किन्तु इन पर ही हमें मनुष्य के पूर्व इतिहास के लिए निर्भर रहना पड़ता है।

टेटोनियसः (Tetonius)

सब से प्राचीन नर वानर जीवाश्म पाँच करोड़ वर्ष पूर्व याने ईयोसीन (Eocene) संकाल का है। इसका मुख छोटा और बड़ा मस्तिष्क है। गर्दन की हड्डियों से पता चलता है कि यह पीछे मुड़कर देख सकता था। यह उत्तरी अमेरीका में मिला है। इसका नाम टेटोनियस (Tetonius) रखा गया है, और अनेक वैज्ञानिकों के अनुसार यही मनुष्य का मूल पूर्वज है।

नोर्थेक्टस : (Northactus)

अमेरिका में "अडापिस" (Adapis) और यूरोप में नोर्थेकटस (Northactus) के जीवाश्म मिलते हैं जोकि लगभग चार करोड़ वर्ष पूर्व के माने जाते हैं। इनको अनेक वैज्ञानिक लिमुर प्रजाति के ही मानते हैं, और पुरुषाम वानरों में नहीं गिनते। इनके विषय में इतना कम मालूम है

कि निश्चित रुप से कुछ नहीं कहा जा सकता। बर्मा में चार करोड़ वर्ष के छोटे छोटे ज़म्भों के जीवाश्म जिन्हे "एम्फिथिकस" (Amphipithecus) कहते हैं मिले हैं जिनका आकार कुछ कुछ पुरुषाभ वानरों का सा है।

पेरापिथिकस : (Parapitheceus)

इसके बाद ओलिगोसीन संकाल (Oligocene) का एक जीवाश्म जम्भ जिसकी प्रजाति को पेरापिथिकस (Parapithecus) नाम दिया गया है, मिस्र में मिला है। यह कुछ कुछ टॉसियस (Tarsius) की तरह प्रतीत होता है लेकिन इसका मस्तिष्क अधिक विकसित है। कुछ वैज्ञानिकों के अनुसार यही प्रजाति मनुष्य और कपियों का पूर्वज है। इसका समकालीन प्रोपलियोपिथिकस (Propliopithecus) का जीवाश्म मिला जिसे उच्च श्रेणी के नर वानरों का पूर्वज माना गया है।

प्रोप्लियोपिथियोकस :

मयोसीन संकाल में अफ्रीका में प्रोकोन्सल (Proconsul) नामक नर वानर प्रजाति भूमि पर रहती थी। यह भी मध्य और भीम-वानरों के पूर्वजों की शृंखला में मानी गई है। इसके जम्भ (Jaws) मनुष्य के से छोटे छोटे थे और अन्य वानरों की तरह नहीं थे।

प्लैयोसीन संकाल (करीब एक करोड़ वर्ष पूर्व) में अनेक पुरुषाभ वानर प्रजातियाँ संसार में बसी हुई थीं। इनमें से एक प्रजाति जिसे शिवापिथिकस (Sivapithecus) का नाम दिया गया है, मनुष्य के मूल पूर्वजों की शृंखला में माना जाता था। किन्तु आधुनिक वैज्ञानिकों के अनुसार यह विचार ठीक नहीं है, क्योंकि इसके बड़े भारी जम्भ था की हड्डियों और शवदंत, पाये जाते हैं जो मनुष्य में नही होते। "रामापिथिकस", "सुग्रीवापिथिकस" इत्यादि प्रजातियों के जीवाश्म भारत में मिले हैं।

लुप्त कड़ि : (Missing Links)

प्लैयोसीन (Pliocene) संकाल में अफ्रीका में एक पुरुषाभ वानरों की प्रजाति बसी हुई थी जिसकी करोटि (Skull) और दंत (Dentition) मनुष्य के ही सदृश थे। इसका मस्तिष्क अन्य कपियों से बड़ा था, सीधा शरीर था, और गाल और जम्भ मानवीय आकार के थे। इसके नितंब हड्डियाँ (Hip bones) मनुष्य की तरह चौड़ी थीं जिससे ये अपने दो पैरों पर अन्य वानरों की अपेक्षा अच्छी तरह खड़ा हो सकता था। इसकी
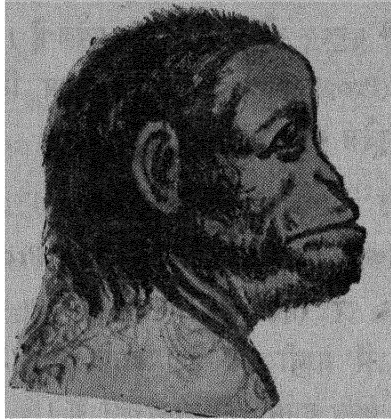
AUSTRALOPITHECUS

चित्र 16 : आस्ट्रलोपिथिकस

तीन प्रजातियाँ थीं:—पहली प्रजाति को आस्ट्रेलोपिथिकस (Australopithecus) का नाम दिया गया। आप चित्र 16 में देखेंगे कि इसका सिर और दाँत मनुष्य के जैसे ही हैं। इसकी भौंहें अन्य वानरों की तरह आगे की ओर प्रक्षेपित नहीं हैं, बल्कि मनुष्य की ही तरह हैं। इसके शवदंत छोटे और गालों का आकार मनुष्य सा ही है। यद्यपि इसका चेहरा वानर का है फिर भी इसमें अन्य कपियों से अधिक मानवीय लक्षण प्रकट होते हैं।

आस्ट्रेलोपिथिकस का समकालीन पुरुषाभ वानरों की दूसरी प्रजाति पारान्थ्रोपस (Paranthropus) है। इसका विशाल आकार है। इसके दंत और मस्तिष्क मनुष्य के से हैं।

प्लिसिएन्थ्रोपस (Plesianthropus)

तीसरी प्रजाति प्लिसियेन्थ्रोपस है। इसके कंधे वानरों के सदृश हैं, लेकिन नितंब मनुष्य की तरह चौड़ा है, जिससे यह जीव देर तक अपने
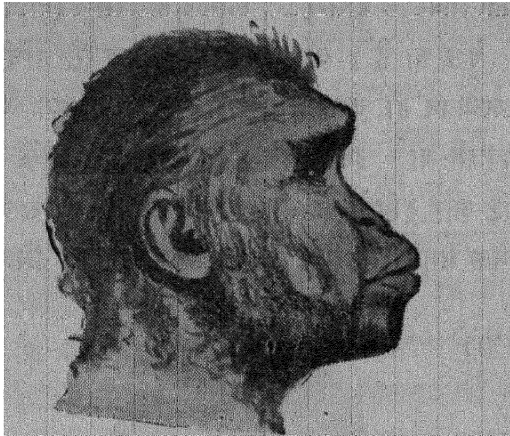
PLESIANTHROPUS TRANSVAALENSIS

चित्र 17: प्लिसिएन्थ्रोपस

दो पैरों पर खड़ा रह सकता था। इसका मस्तिष्क गोरिला से बड़ा और मनुष्य से छोटा है. चित्र 17 देखिए।

ईयोसीन या 'प्रातिनूतन संकाल' (१० लाख वर्ष पूर्व) में मनुष्य का जीवाश्म वानरों के सदृश है। लेकिन पिछले युगों की तरह मनुष्य से मिलते हुए वानरों सा नहीं। इनमें सब से प्राचीन एक बच्चे की करोटि (Skull) का जीवाश्म जावा में मिलता है। यह बच्चा करीब ६ लाख वर्ष पूर्व उत्पन्न हुआ होगा। इसका सिर मानवीय होने पर भी कुछ कुछ नर-वानर का सा है क्योंकि इसका मस्तिष्क पीछे को प्रतिसारी है, और

मस्तिष्क के परिमाण और बुद्धि में कोई संबंध नहीं है। हाथी का सिर बहुत बड़ा है लेकिन बुद्धि अधिक तीव्र नहीं है। जावा के मनुष्य का मस्तिष्क बल ३५० सी. सी. माना जाता है जो आज के मनुष्य और पुरुषाभ वानर के बीच की गणना है। आज के मन्द बुद्धि वाले मनुष्य को ९०० सी. सी. (900 C. C.) दिया जाता है। दांतों में भी जावा मनुष्य और आधुनिक मनुष्य में काफ़ी अन्तर है। गालों के दाँत (Cheek teeth) आधुनिक मनुष्य में चौड़े और समान्तर हैं, और इनकी जड़ अन्दर तक घुसी हैं। पर जावा के मनुष्य में ये दाँत कम चौड़े हैं अधिक लम्बे और इनकी जड़ अपसारित (divergent) हैं। इसकी भौंहें आगे की ओर वानरों की तरह प्रक्षेपित हैं किन्तु मुख्य गुण यह है कि इसकी जाँघों की हड्डियाँ (Thigh bones) मनुष्य की तरह सीधी हैं और वानरों की तरह वक्र नहीं। इससे भी महत्वपूर्ण विषय यह है कि इसमें वाक्-शक्ति के केन्द्र पहले पहल पाये जाते हैं। इन सब चिन्हों से पता चलता है कि जावा का कपि-मानव (Pithecanthropus) में वानर और आध्य मानव के लक्षण मिले जुले थे। फिर यह भी अनुमान किया जा सकता है कि पुरुषाभ वानरों की अपेक्षा यह मनुष्य पहले पहल अनलाश्म यन्त्र बनाने लगा।

चीन में कपि मानव प्रजाति का जीवाश्म पीकिंग (Peking) में पाया गया है, इसको "पीकिंग चीन मानव" ("Sinanthropus pekenensis") का नाम दिया गया है। यह जावा के मनुष्य का समकालीन ही माना जाता है और उसी प्रजाति का क्योंकि दोनों की करोटि जीवाश्म एक सा ही हैं। परन्तु चीन मानव ने सभ्यता की ओर अधिक विकास कर लिया था जैसे उसके पत्थरों के यन्त्रों के प्रयोग से प्रकट होता है। इसके बनाये हुए चुल्हियों (hearths) से पता चलता है

कि इसने पाँच लाख वर्ष पूर्व आग का उपयोग सीख लिया। चित्र 19 देखिए।

SINANTHROPUS PEKINENSIS

चित्र 19 : सिनानथ्रोपस पीकिनेनसिस

अब हम पुरुषाभ वानर, कपि और मनुष्य के भेदों को जानते हैं और प्राचीन मानव जीवाश्मों के विषय में भी कुछ समझने लगे हैं। संक्षेप में हमें पता चला है कि इयोसीन काल से पहले पहल मनुष्य पूर्वज-प्रजातियों के जीवाश्म पाये जाते हैं, जिनमें अधिकाँश लिमुर और टार्सियस इत्यादि जीवों के हैं; मयोसीन संकाल के जीवाश्मों में पुरुषाभ वानरों के गुण प्रमुख मालूम पड़ते हैं, फिर प्लीस्टोसीन संकाल से कपि, नरवानर दोनों के जीवाश्म प्राप्त होते हैं। इन वानरों में मानवीय गुण अधिक प्रमुख होते जाते हैं। इयोसीन संकाल में आध्य मानव के जीवाश्म पहले पहल जावा और चीन के कपि मानवों में मिलते हैं। मनुष्य के उद्विकास की तीन संभावनायें हैं :—

(कपि मानव=पिथिकेन्थ्रोपस मानव)

आप अब समझ चुके हैं कि चार्ल्स डारविन के मूल सिद्धान्त को कुछ अन्तरों के साथ आधुनिक वैज्ञानिक मान गये हैं। ये अन्तर मानवीय जीवाश्मों की प्राप्ति और भ्रूण विज्ञान (Embryology) के विकास के साथ साथ किये गये। वैज्ञानिकों का विश्वास है कि ६ करोड़ वर्ष पूर्व खटी या क्रेटेशस युग में मनुष्य और वानरों का मूल पूर्वज रहा होगा। इससे स्पष्ट पता चलता है कि यद्यपि मनुष्य ने अक्सर अपना वंश सूर्य और चन्द्र से परम्परागत लगाकर अपनी शान दिखाई है, वह सच वानरों का सगा संबंधी है और उसके दैनिक आचरण से हमें इस बात पर कोई ख़ास आश्चर्य नहीं होना चाहिये।

अब आगे के पृष्ठों में हम जानेंगे कि आध्य कपि-मानव कैसे आधुनिक "होमो सेपियन्स" (Homo sapiens) प्रजाति में उद्विकसित हुआ। किन्तु उससे पहले हमें अपने मुख्य विवरण की ओर लौटना होगा।

प्रथम-अन्तर-हिम अनुयुग :

प्रथम हिम-अनुयुग के पश्चात् प्रथम-अन्तर-हिम अनुयुग (First Interglacial period) रहा था। यह अनुयुग लगभग ६० हज़ार वर्षों का माना गया है। इस अवधि में भारत में कोई विशेष भौगोलिक अंतर नहीं हुआ। काश्मीर की घाटी इस समय उच्च-सम भूमि थी और इसमें एक दो झील और सरितायें बह रहीं थीं। ये सरितायें नदियों में साद और बालु का परिवहत करती जातीं थीं। हिमालय प्रदेश की जलवायु सम-शीतोष्ण थी, किन्तु अन्य प्रदेशों की आबहवा गरम थी, और नियत समय पर (Periodic) वर्षा होती थी।

वनस्पति और जीवित-प्राणी :

अन्तर-हिम अनुयुग की वनस्पति के विषय में हमें अधिक ज्ञान नहीं है। इस समय द्विविज-पात्रीय वन (Dicotyledons) और चीड़ वृक्ष

(Pines) काश्मीर प्रदेश में बसे थे। इस समय हिमालय प्रदेश, दक्षिणी पाकिस्तान, पोतवार, इत्यादि स्थानों में अनेक जंगली पशु प्रजातियाँ निवास करती थीं। ये प्रजातियाँ पिछले युगों के प्राणियों से भिन्न थीं किन्तु ये भी समय बीतने के साथ अप्रवृत्त होती गईं।

पहले हमारे रिश्तेदार पुरुषाभ वानर भारत के वनों से गायब हो गये। भूवैज्ञानिको के अनुसार ये नर वानर भारत द्वीप समूह (East Indies) की ओर प्रव्रजित हुए। हमें भारत में बस लाल बन्दर और लंगूर के पूर्वजों के जीवाश्म मिलते हैं।

सूअर-वंश की अनेक प्रजातियाँ भारत के वनों में बसी थीं। इनमें से "हिप्पोहियस" (Hippohyus) प्रजाति का चेहरा घोड़े का सा था। आदि-घोणि या आन्थराकोथेरा (Anthracothera) वंश की अनेक प्रजातियाँ संसार के अन्य देशों में अपक्षीण होने पर भी भारत में बसी रहीं। आधुनिक जलहस्ती (Hippopotamus) के पूर्वज पंजाब के वनों में निवास करते थे। हैपेरियोन (Hipparion) नामक तीन उंगलियों वाले पैरों की अश्व प्रजाति लुप्त हो गई और उसके स्थान पर दो उंगलियों वाले पैरों की इक्वियस (Equus) नामक अश्व प्रजाति का उद्विकास हुआ। अनेक वैज्ञानिकों के अनुसार आज के एक ऊँगलीदार-पैर के घोडों के पूर्वज अश्व प्रजाति, उत्तरी अम्रीका से भारत में आ पहुँची। भारतीय वैज्ञानिक इस विचार को नहीं मानते। इनके अनुसार अश्व प्रजातियाँ शुरु से ही भारत के निवासी हैं। हाथी और अन्य जीवों की तरह तीन उंगलियों वाली हैपेरियोन प्रजाति उद्विकसित होकर आज के एक उंगलि-वाले घोड़े में परिवर्तित हो गई।

पहले कहा जा चुका है कि महाग्रीवों की संख्या भारत में अधिक होती गई। अब इसीकी अधिकांश प्रजातियाँ अपक्षीण होती गईं। परन्तु "शिवाथेरियम" या "शिव का जीव" एक महाग्रीव प्रजाति भारत में

ही रह गई। आप चित्र 15 में देखेंगे कि इस जानवर की लम्बी गर्दन है और टाँगें महाग्रीवों की तरह नहीं हैं। इसका मुँह छोटा है और नासिका कुछ टापिर की तरह वक्रत है, और इसके सिर पर दो जोड़े सींग हैं। इन विशेष लक्षणों के कारण यह जीव अन्य महाग्रीवी प्रजातियों से बहुत भिन्न है। "शिवाथेरियम," महाग्रीव और हरिण दोनों के मध्य की संबंध कटि (Connecting link) के समान है। आजकल महाग्रीव बस अफ्रीका में पाये जाते हैं।

हस्ती वंश की शंकदन्त प्रजाति या मेस्टोडोन्ट (Mastodonts) भी अन्तर-हिम-अनुयुग में लुप्त होती गई। इसके स्थान पर स्टेगोमेस्टोडोन्ट (Stegomastodont) का विकास होता गया। यह आध्य-हस्ती ८-१० फुट ऊँचाई की थी। इसके ऊपरी जम्भ में एक जोड़े दन्त थे, नीचे कुछ नहीं। भारतीय संग्रहालय में एक जीवाश्म है जिसका दन्त व्यास (Diameter) में ३ फुट और लम्बाई में ११ फुट है। इनकी एक प्रजाति का नाम "गणेश" रखा गया, क्योंकि हिन्दुओं की कल्पना में गणेशजी के चेहरे को भी एक हाथी की सूँड आभूषित करती है।

अन्तर-हिम-अनुयुग में पहले पहल आज के से पशुओं का विकास हुआ। यूरोप से प्रव्रजित होकर गरल (Bison), गाँय, भेड़, बकरी इत्यादि भारत में आ पहुँचीं। इनमें से अनेक पशुओं का नाश हो गया है। इसी समय कृन्तक गणों (Rodents) के छोटे छोटे जीव चूहे, गिलहरी, शशक इत्यादि उत्पन्न हुए।

माँस भक्षी जीवों में शेर, भालू, भल्लूक, उद्र पुण्डरीक (Panther), गन्ध मार्जार (Civet cat) इत्यादि वनों में बसे हुए थे। इन में से अनेक प्रजातियाँ आजकल नहीं पाई जाती हैं। (चित्र 15 को देखिये)

कलकत्ते के संग्रहालय में इस समय के वृक्ष, वनस्पति, पशु आदि के जीवाश्म और हड्डियाँ एकत्रित किये गये हैं। इन्हीं टूटे फूटे जीवाश्मों के

अध्ययन से शृंखलाबद्ध भौमिकीय-इतिहास बनाई जाती है, जिस प्रकार हरप्पा, मोहेन्जोदड़ो, हम्पी आदि खण्डहरों के अध्ययन से भारतीय इतिहास बनाया गया।

अनलाश्म यंत्र : (Flint Implements:)

प्रथम हिम अनुयुग के अन्त में फिर से पृथ्वी में उथल पुथल मचा जिससे हिमालय और आस पास के प्रदेशों का उत्थान हुआ। इसके पश्चात् इयोसीन युग के मध्य संकाल में दूसरा हिम अनुयुग पड़ा जो ४० हज़ार वर्षों का था। इस अवधि में प्रथम-हिम-अनुयुग की तरह भीषण ठंड नहीं पड़ा। हिमानियाँ (Glaciers) पर्वतों से अवरोहित होकर सम-भूमि में आ पहुँचती थीं। आज की काश्मीर घाटी उस काल में २००० फुट वर्ग क्षेत्र की महान झील हो गई थीं। इस प्राचीन भौमिकीय झील को करेवा झील नाम दिया गया है। आस पास के प्रदेशों से चट्टान, गण्डाश्म, साद इत्यादि पदार्थ इसके फर्श में अवसादित होते गये। ये गण्डाश्म-पात्र (Boulder beds) पुरवशेषविज्ञों के लिये महत्वपूर्ण हैं क्योंकि इनमें कभी कभी प्राचीन मनुष्य के बनाये हुए यन्त्र प्राप्त होते हैं। पश्चिमी पाकिस्तान के पोतवार, और भारत के जम्मु, काश्मीर, नर्मदा, मद्रास आदि स्थानों में गण्डाश्म-पात्र (Boulder beds) मिलते हैं। इनमें अनलाश्म यन्त्र मिलें हैं।

दूसरे हिम-अनुयुग के मानवीय यन्त्रों के अध्ययन से उन्हें "पूर्व सोहन" (Pre-Sohan) सभ्यता का नाम दिया गया है। नर्मदा की घाटी में जो यन्त्र मिलते हैं वे संसार के "एबिवेलियन" और "अशूलियन" सभ्यताओं (Abbevillian and Ascheulian) के प्रतीक माने जाते हैं। मद्रास के पास कोरतालयार नदी तट पर गण्डाश्म पात्र हैं जिनमें अनलाश्म के यन्त्र मिलें हैं। ये यन्त्र भी एबिवेलियन सभ्यता के ही हैं। पुरापाषाण यन्त्रों में अधिकाँश, भद्दे आकार की कुल्हाड़ी हैं। इसी पात्र में इनसे

अधिक परिष्कृत और तीव्र यन्त्र भी पाये गये हैं जिन्हें पुरवशेषविज्ञ "अशूलियन" सभ्यता का मानते हैं। जूनियर नामक प्रसिद्ध पुरवशेषविज्ञ के अनुसार एबिवेलियन सभ्यता ५४०-४८० हज़ार वर्षों के पूर्व समृद्ध रहा, और अशूलियन ४३०-१३० हज़ार वर्ष पूर्व। इससे पता चलता है कि भारत में मनुष्य की उत्पत्ति ५ लाख वर्ष पूर्व हो चुकी थी। परन्तु यह अनुमान मात्र है क्यों कि इस काल का कोई भी मानवीय जीवाश्म भारत में नहीं मिला है।

करीब २० वर्ष पूर्व येल विश्व विद्यालय (Yale university) के प्रोफ़ेसर एच. डी. टेरा (H. de terra) ने पंजाब और काश्मीर (करेवा झील स्थल) में बहुत कुछ खोज किया पर उन्हें कोई मनुष्य जीवाश्म नहीं मिला। किन्तु उन्हें अनेक पुरुषाभ जीवाश्म मिले, और काश्मीर घाटी और राम नगर में प्राचीन मिट्टी के बर्तन और घड़े उन्होंने पाये। परन्तु संभव है कि और अधिक विस्तृत खोज करने से इन क्षेत्रों में मानवीय जीवाश्म प्राप्त हों, क्योंकि शिवालिक पहाड़ियों और करेवा क्षेत्र ऐसे स्थल हैं जिनमें हज़ारों वर्षों तक जीवाश्म सुरक्षित रह सकते हैं।

यद्यपि भारत में हिम अनुयुगों के मानव जीवाश्म नहीं मिलते हैं, पर यूरोप के जर्मनी देश में पुरापाषाण (Palaeolithic) मानव के जम्भ (Fossil Jaw) का जीवाश्म मिला है। इस जम्भ का नाम होमोहीडलबेंजेनसिस (Homo heidelbergensis) रखा गया क्योंकि वह हीडलबर्ग (Heidelberg) के पास मिला। यह जम्भ वानर के जम्भ की तरह भारी है, इसकी वाक-शक्ति कम है और यह शाकाहारी मालूम पड़ता है। इस जीवाश्म के पास हाथी, घोड़े, जलहस्ती आदि के जीवाश्म भी मिलें हैं। यह जीवाश्म ४-४½ लाख वर्ष पूर्व का माना गया है। दूसरे अन्तर-हिम-अनुयुग में अनेक पशु प्रजातियाँ जैसे गवाल, हाथी, घोड़े, गाय, इत्यादि समृद्ध हुए।

द्वितीय अन्तर-हिम-अनुयुग :

द्वितीय हिम अनुयुग के अन्तर में हिमालय और आस पास के प्रदेशों का फिर से उत्थान हुआ। हिम अनुयुग के पश्चात् आबहवा गरम होने लगी। इस उष्ण अवधि को दूसरा अन्तर-हिम-अनुयुग कहते हैं। इसे महान-अन्तर-हिम-अनुयुग भी कहते हैं क्योंकि यह २६० हज़ार वर्षों का संकाल था, और प्राति-नूतन युग का चतुर्थ काण्ड इसी में बीत गया।

जब हिम और अन्तर हिम अनुयुग हिमालय प्रदेशों में पड़े तब भारत की सम-भूमि बहुत काल तक शुष्क ही रही, किन्तु नियत समय पर थोड़ी बहुत वर्षा हो जाती थी। बीच बीच में आँधियाँ भी उठतीं थीं। नदियों के अन्तर्गत अवसादित गण्डाश्मों पर तीव्र प्रवाह से अपक्षरण (Erosion) हुआ और इन पात्रों पर उत्तलनों की रचना हुई। पहले पहल उत्तलन पाकिस्तान में पोतवार में हुआ और भारत में नर्मदा घाटी में। इन्डोब्रम्ह नदी संभवत: लुप्त हुई और उसका पूर्वीय भाग बंगाल की खाड़ी में विलीन हुआ और पश्चिमी भाग अरब सागर में।

करेवा झील क्षेत्र प्राचीन मनुष्य के निवास के लिए अच्छी जगह थी। उस समय भी काश्मीर एक सुन्दर स्थल था; उसके झीलों में कमल खिले रहते थे और पानी में छोटे छोटे रंग-बिरंगी मछलियाँ खेलती रहती थीं। आस पास के वनों में देवदार, चीड़, ताड़, आरुणी (Chestnut) भूर्ज (Birch) इत्यादि के घने घने वृक्ष बसे हुए थे। इन्हीं वनों में हरिण, मृग, घोड़े, शिवाथेरियम, हाथी, शेर, आदि जानवर निवास करते थे। ऊपर लिखित जानवरों और पौधों में कई आजकल भी पाये जाते हैं। (चित्र में देखिये) काश्मीर और पीर पंजाल की घाटी में जब डी टेरा (De Terra) की पार्टी गई तब इन्होंने कमल, मीन और अनेक पशुओं के जीवाश्म भी पाये। गुलमर्ग के पास पीर पंजाल के प्राचीन झीलों के पात्र (Old lake beds) अपनी मूल स्थिति से ५००० फुट उच्छित हो

गये हैं; यदि किलनभंग के आसपास खोदें तो आज भी हमें इन प्राचीन झीलों के मीन और कमल के पत्तों के जीवाश्म आसानी से मिल सकते हैं। येल पार्टी के साथ खोज करते हुए भारतीय भूवैज्ञानिक श्री एन. के. एन. अय्यङ्गार ने काश्मीर घाटी में एक प्राचीन हस्ती का जीवाश्म करेवा झील क्षेत्र में पाया। आपको पता ही है कि करेवा झील क्षेत्र में आजकल हाथी नहीं बसते हैं। यह प्राचीन हाथी संभवत: करेवा झील के अन्दर गिर पड़ा होगा। उसके दन्त और हड्डी पूर्ण जीवाश्म में नहीं परिणत हुए हैं। इससे प्रकट होता है कि प्रकृति एक जीवाश्म को बनाने के लिए लाखों वर्ष लेती है।

जो अनलाश्म (Flint) यन्त्र बंबई, नर्मदा घाटी, गुजरात, मद्रास आदि दूर दूर स्थानों में मिलते हैं, उनसे पता चलता है कि पुरापाषाण मनुष्य भारत के कोने कोनें तक फैल गये थे। पोतवार के "सोहन" नदी के उत्तलनों में कुल्हाड़ी और अनेक लकड़ी काटने के यन्त्र इत्यादि अबेवेलियन और अशूलियन सभ्यता के माने जाते हैं। "पूर्व सोहन" सभ्यता का नाम इन्हीं को दिया जाता है। ये यन्त्र अण्डाकार (Oval) हैं और इनकी धार काफ़ी तीव्र है। कई यन्त्र स्फटिक (Quartz) रोड़ियों के बने हैं। कुछ यन्त्रों में दोनों तरफ़ धारियाँ हैं और ये यूरोपीय क्लैक्टोनियन (Clactonion) सभ्यता के यन्त्रों के सदृश हैं। नर्मदा घाटी की कुल्हाड़ी और कुठार नम्बर १ और नम्बर २ उत्तलनों में पाये जाते हैं, जोकि अबिवेलियन और अशूलियन सभ्यताओं के ही माने जाते हैं, याने सोहन सभ्यता के पूर्व के।

बम्बई के खाण्डिवली (Khandivli) में ऐसे ही यन्त्र मिले हैं जिनका पुरापाषाण मनुष्य ने उपयोग किया होगा। सबरमती (गुजरात) और मद्रास में भी इसी अशूलियन सभ्यता के चिन्ह मिले हैं।

इंगलैण्ड में एक मानवीय करोटि का जीवाश्म केन्ट में मिला है। हीडलबर्ग के जीवाश्म के बाद यही मनुष्य जीवाश्म प्राप्त हुआ है। ऐसा मालूम पड़ता है कि यह करोटि अशूलियान सभ्यता के समय की ही थी। यह करोटि भारी है परन्तु आज के मनुष्य के जैसी ही है। इसका मस्तिष्क बल १३२ सी. सी. (132 C. C.) माना गया है। यह द्वितीय अन्तर हिमअनुयुग के उत्तलनों में अशूलियन सभ्यता के मनुष्य घ्रष्टों (Artefacts) के साथ मिला है। इस को स्वान्सकूम्ब करोटि (Swanscombe Skull) का नाम दिया गया है।

तृतीय हिम-अनुयुग :

उत्तर प्राति-नूतन संकाल या अप्पर प्लीस्टोसीन (Upper Pleistocene) में फिर से हिमालय का उत्थान हुआ जिसके पश्चात् तृतीय हिम-अनुयुग (Interglacial period) पड़ने लगा। काश्मीर की पीर पंजाल श्रेणी और करेवा झील फर्श करीब ६००० फुट के उत्थान पर उठ गये। करेवा झील लुप्त हो गई और आज इसके अवशेष दाल और वुलार जैसे छोटे झील ही हैं। भारतीय गंगा घाटी के उत्तरी प्रदेश उच्छित होकर हिमालय पर्वत के पाद-गिरियों में बदल गये। इन्हीं को आजकल शिवालिक और कालका की पहाड़ी कहते हैं। पोतवार प्रदेश में साल्ट रेंज पर्वत श्रृंखला बन गई। ख़ैर-ई-मुरत और काला चिट्टा पर्वत श्रेणियाँ भी इसी समय बनी। इन्डोब्रम्ह नदी के स्थान पर आजकल की सिन्धु जो उसकी एक उपनदी थी, बहने लगी और अरब-सागर में जा मिलती थी। गंगा ने इन्डोब्रम्ह के पूर्वी शाखा को अनधिग्रहण किया और बंगाल की खाड़ी की ओर निष्क्रम मार्ग ढूँढने लगी। इस काल में नदियों के साथ असंख्य गण्डाश्म (Boulders) बह आते थे जोकि नदी उत्तलनों में परिणत होते थे।

यद्यपि भारत के नदी उत्तलनों में अनेक प्रकार के मनुष्यघ्रष्ठ (Artefacts) प्राप्त हुए हैं फिरभी हमें पुरापाषाण मनुष्य के निवास-स्थलों

(Habitation) का प्रमाणित ज्ञान नहीं मिलता। पोतवार के उत्तलनों में "सोहन सभ्यता" के पश्चात् के अनलाश्म यन्त्र प्राप्त हुए हैं। इनके अच्छे धार वाली कुल्हाड़ियों को यूरोपीय लेवालोईज़ (Levallois) सभ्यता के समान माना गया है। ये यन्त्र मनुष्य ने अपने हाथों से २५ लाख वर्ष पूर्व बनाये।

तृतीय हिम-अनुयुग में नर्मदा की घाटी में भी मानवीय निवास (Human habitation) का अनुमान किया जाता है। यहाँ के यन्त्रों को भी "सोहन सभ्यता" के पश्चात् के मानते हैं जोकि अशूलियन सभ्यता के यन्त्रों की तरह हैं। ये यन्त्र नर्मदा के नम्बर ३-४ उत्तलनों में पाये गये। मद्रास के पास वड़मादुरै, और अट्टिरापक्कम में रहनेवाले पुरापाषाण मनुष्य के यन्त्र नर्मदा के यन्त्रों से अधिक परिष्कृत समझे जाते हैं।

तृतीय अन्तर-हिम-अनुयुग : Third Interglacial Period

लगभग २ लाख वर्ष पूर्व, तृतीय अन्तर हिम अनुयुग पड़ने लगा। गर्मी पड़ने पर नदियों के प्रवाह का वेग बड़ा और वे अपने आन्तरिक तहों को अपघोषित करती गईं। इस अपक्षरण (Erosion) से उत्तलनें (Terraces) बनती गईं जिनमें आज मानवीय यन्त्र हम को प्राप्त होते हैं। इनमें कुठार, गोलाकार हथोड़ी, कुल्हाड़ी इत्यादि मिलते हैं। नर्मदा नदी के यन्त्र पत्थरों के ही बने हैं। बम्बई के पुरापाषण मनुष्य ने अनलाश्म के शल्य (Arrow head) बनाना सीख लिया जिसको यूरोपीय आरिगनेचियन (Aurignacian) सभ्यता से तुलना किया जाता है।

यूरोप और पश्चिमी एशया में तृतीय अन्तर हिम अनुयुग के अनेक मानवीय जीवाश्म मिलते हैं। इस अवधि का पहला मानवीय-करोटि का जीवाश्म जर्मनी के डूसलडोर्फ़ (Dusseldorf) में मिला। फ्रान्स और पेलेसटैन में भी ऐसी जीवाश्म करोटि मिलती हैं। ये सब जीवाश्म नीएन्डरथाल

मानव (Neanderthal man) जाति के ही हैं। नीएन्डरथाल मानव के चहरे में कुछ कुछ वानर के लक्षण उपस्थित थे, उसकी पीठ की हड्डी में आधुनिक मनुष्य की तरह का सुडौल वक्र (Graceful Curve) नहीं था, बल्कि वह आगे की तरफ़ झुका हुआ था. इसका मुख (Face) लम्बा सा था और भौंहें आगे की ओर प्रक्षेपित थीं परन्तु इसका मस्तिष्क पीछे की तरफ़ प्रतिसारी था। इसका भारी जम्भ था, और नर-वानरों की तरह बडे बडे दाँत थे। इसका सिर काफ़ी बड़ा था और मस्तिष्क बल १४०० सी. सी. का माना गया है, जोकि किसी भी नर-वानर में नहीं पाया गया है। जावा के कपि मानव की तुलना में नीएन्डरथाल मानव ने बहुत उद्विकास कर लिया था। अनुमान किया जाता है कि यह हीडलबर्ग के मानव (Homo-heidelburgensis) की तरह घूमता फिरता (Wanderer) नहीं था बल्कि अपनी गुफ़ा में ही निवास करता था और अपने काम के लिए अनलाश्म
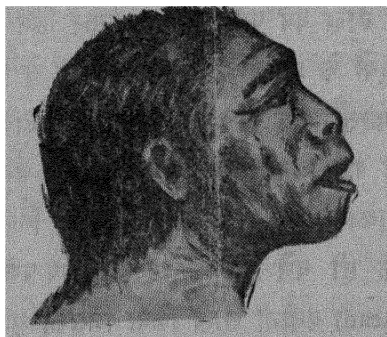
NEANDERTHAL MAN

चित्र 20 : नीएण्डरथल मानव दो लाख वर्ष पूर्व।

यन्त्र तैयार करता था। करीब एक लाख वर्ष पूर्व नीएन्डरथाल-मानव-जाति संसार में समृद्ध हुई। चित्र 20 देखिए।

जावा में भी इसी के समकालीन प्राचीन मनुष्य उपस्थित थे। कपि-मानव का जीवाश्म जिस स्थान पर मिला, उसी के पास एक और

जीवाश्म मिला है। यह मनुष्य नीएन्डरथाल मानव से अधिक सभ्य था और अनलाश्म अथवा हड्डी के यन्त्र बनाने लगा था। इसको "सोलो" मानव (Solo Man) का नाम दिया गया है।

चतुर्थ हिम-अनुयुग :

एक लाख वर्ष पूर्व चतुर्थ हिम-अनुयुग के चक्कर के पहले, हिमालय प्रदेश में अधिक उत्थान हुआ। हिमालय पर्वत श्रृंखला का संरुप (Configuration) और उच्छाय (altitude) आजकल के जितना हो गया। सिन्धु नदी का निष्क्रंम अरब सागर में हुआ। अम्बाला से दिल्ली तक की उच्च सम भूमि इस काल में ही बनी। सरस्वती नदी का उत्सारण (drainage) सब यमुना नदी में अवसादित हुआ। किन्तु सरस्वती अपना मार्ग बदलकर अरब सागर की ओर राजस्थान से होकर बहने लगी।

चतुर्थ-हिम-अनुयुग का भी कोई मानव जीवाश्म भारत में नहीं मिला है। किन्तु पुरापाषाण मनुष्य (Palaeolithic man) द्वारा बनाये हुए यन्त्र नदियों के चौथे उत्तलनों में मिलते हैं। पोतवार उत्तलनों के मनुष्य-भ्रष्ट (artefacts) सोहन सभ्यता के ही माने गये हैं। भारत के बम्बई और पश्चिमी तट की सभ्यताओं की यूरोप के आरिगनेचियन सभ्यता (Aurignacian culture) से तुलना की जाती है। यूरोप में इस समय नीएन्डरथाल मानव (Neanderthal man) के स्थान पर पुरापाषाण या पालियोलिथिक (Palaeolithic) सभ्यता का आखिरी प्रतिनिधि, आरिगनेचियन मानव (Aurignacian man) का विकास हुआ। उत्तरी अफ्रीका के रोडीसिया प्रदेश में एक अपूर्ण जीवाश्म-करोटि मिली है जिसे "रोडीसिया का मनुष्य" (Rhodesian man) का नाम दिया गया। इसकी
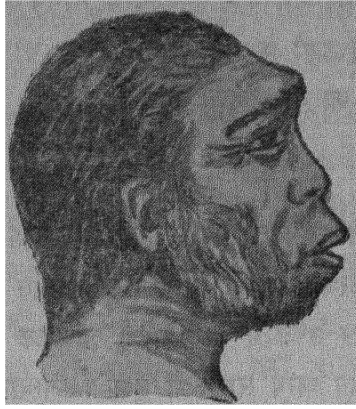
RHODESIAN MAN

चित्र 21 : रोडीसिया का मानव एक लाख वर्ष पूर्व ।

विशेषता है कि यद्यपि यह नीएन्डरथाल मानव से अधिक कपियों की तरह है फिरभी मस्तिष्क और दाँत आधुनिक मनुष्य के ही सदृश हैं। चित्र 21 देखिए। इस जाति का मनुष्य संसार में बहुत समय तक रहा होगा। रोडीसिया का मनुष्य नीएन्डरथाल जाति के मनुष्य से अच्छी तरह खड़ा

CRO-MAGNON MAN

चित्र 22 : क्रोमेगनन मानव। आधुनिक मानव।

होकर चल सकता था। संभव है कि यह आध्य जाति अफ्रीका के प्राचीन वन-जातियों से मिलती जुलती हो।

इन सब आद्य मानवों से आरिगनेचियन मनुष्य अधिक सभ्य माना जाता है। यह मनुष्य पुरापाषाण सभ्यता के अंतिम काल में जीवित था, और नीएन्डरथाल मानव का समकालीन था। यह मनुष्य आधुनिक क्रोमेगनन या होमो सेपियन्स (Cro-Magnon man or Homo sapiens) से अधिक भिन्न नहीं था। चित्र 22 में क्रोमेगनन मानव को देखिये।

अध्याय २२

इतिहास-पूर्व अवधि

आर्यों का आगमन और सरस्वती का लोप:

अब हम अपनी कहानी के अन्तिम काण्ड पर पहुँचते हैं। यहाँ पुरवशेषविज्ञों के पृष्ठों से कुछ पन्ने हम निकालेंगे जिससे भूवैज्ञानिक और मानवीय लिखित इतिहास में संबंध कटि स्थापित हो सके।

यह इतिहास पूर्व अवधि इयोसीन युग के पश्चात का संकाल है, जिसे मध्य पाषाण युग (Middle Stone Age) कहते हैं। इससे संकेत हो जाता है कि मनुष्य अपने यन्त्रों के बनाने में पत्थरों और शिलाओं का उपयोग करने लगा।

चतुर्थ-हिम-अनुयुग के पश्चात् कई उष्ण और शीत अनुयुग एकान्तरित (Alternate) होते रहते थे। भूवैज्ञानिकों के अनुसार आजकल हम ऐसे ही एक अन्तर-हिम-अनुयुग (Interglacial Period) में जीवित हैं।

इस प्रकार अनुयुगों के चक्कर में पृथ्वी में कुछ न कुछ उथल पुथल मचती ही थी। इन हलचलों के परिणाम से शिवालिक पहाड़ियाँ और

हिमालय की पहली श्रेणी अधिक उत्थित हुई और भूमि के धक्के से प्राचीन जलोढ भूखण्डों के आगे प्रक्षेपित हुई। पुरापाषाण मनुष्य, मध्य पाषाण युग में पहले से अधिक परिष्कृत यन्त्र बनाने लगा। इस समय के मनुष्य ग्रष्टों के छोटे परिमाण के यन्त्रों को "मैक्रोलिथ" (Microlith) का नाम दिया जाता है। यह ज्ञात नहीं है कि मनुष्य किस काल से ये छोटे अनलाश्म यन्त्र बनाने लगा क्योंकि ये यन्त्र प्राचीन पुरापाषाण यन्त्रों के बीच ही पाये जाते हैं। इनमें तिकोने कंकड़, गुटिका, स्फटिक, इन्द्रगोप नीलराग, आदि के यन्त्र पाये जाते हैं। पाषाण मनुष्य पत्थरों की धार को तेज़ करके उन्हें लकड़ियों के हस्तनों (Handles) से मिलाकर कुल्हाड़ी की तरह प्रयोग करता था। इन मनुष्यग्रष्टों में कुछ आरे के रुप के यन्त्र भी मिले हैं। ये "मैक्रोलिथ" यन्त्र सोम्बुर, काश्मीर, लिंगराज, (नर्मदा घाटी) बलसाना (गुजरात), खाणडि्लि (Khandivli) बम्बई होशंगाबाद, पचमारी (मध्य प्रदेश) इत्यादि स्थलों में पाये जाते हैं। संकालिया नामक पुरवशेषविज्ञ ने मैक्रोलिथ यन्त्रों के साथ साथ एक मानवीय अस्थि-पंजर (Skeleton) भी पाया है, किन्तु यह एक अपूर्ण जीवाश्म ही है।

नया पाषाण युग : New Stone age

मध्य पाषाण युग के पश्चात् और लिखित इतिहास युग के बीच के संक्रमण (Transitional period) काल को नया पाषाण युग का नाम दिया जाता है।

इस काल में मनुष्य का सभ्यता की ओर अधिक विकास हुआ। उसने अपने रहने के लिए पहले पहल घर बनाना सीखा और साथ साथ अपने काम के लिए गाय, भेड़, घोड़े, इत्यादि पालने लगा, और अपना भोजन खेती करके पैदा करने लगा, पहले की तरह सिर्फ़ आखेट से नहीं।

नया पाषाण मनुष्य सिर्फ़ अनलाश्म के ही यन्त्र नहीं बल्कि सोपानाश्म यन्त्र (Trap rock implements) बनाता था, जिन्हें अच्छी

तरह प्रमर्जित (Polish) करने में वह कुशल हो गया। इस समय की कुल्हाड़ी, क्षीदक (Pounder), मुशल (Pestle), हथोड़ा, निघाति (Anvil) बसूला (Adzes) इत्यादि सोपानश्म यन्त्र मिलते हैं। अन्य अप्रमार्जित (Unpolished) यन्त्र भी मिलते हैं, जिनमें शल्य, आरा शल्कल (Flakes) आदि पाये जाते हैं।

नये-पाषाण-युग के मनुष्य इस प्राय: द्वीप की चारों ओर फैल गये। इस समय के असंख्य मनुष्यभ्रष्ट बम्बई के खाणड्डिलि, आन्ध्र में ब्रम्हेश्वरम, मैसूर में बल्लारी और कूर्ग, मद्रास में उत्तरी आर्काट, आदि स्थलों में मिलते हैं।

नये पाषाण मनुष्य ने ६००० वर्ष पूर्व धातुओं का प्रयोग सीख लिया। इसके द्वारा प्रयोग किया हुआ पहला धातु ताँबा था। ५००० वर्ष पूर्व इसने काँसे का उपयोग सीखा और उसके पश्चात् लोहे का यन्त्र लगभग ४००० वर्ष पूर्व बनाने लगा।

लगभग इसी समय हरप्पा और मोहेंजोदड़ो में एक उन्नत सभ्यता की नींव पड़ चुकी थी। हरप्पा के लोग ताँबा, लोहा, काँसा इत्यादि धातुओं को कुशलता से उपयोग करना जानते थे। उनके बनाये हुए काँच, इन्द्रगोप (Carnelian) कपिशमणि (Jasper) इत्यादि के आभूषण हरप्पा के खण्डहरों में पाये गये। इन्होंने ईंट के घर बना लिए और अपने नगर के जलोत्सरण (Drainage) के लिए अच्छा प्रबन्ध कर लिया था।

हाल के एक भारतीय पुरवशेष-प्रतिवेदन (Archaeological report) के अनुसार हरप्पा, मोहेन्जोदड़ो की सभ्यता, कच्छ और गुजरात तक संभवत: फैली हुई थी। गुजरात में लिथो (Litho) में किये हुए उत्खनन (excavations) में मोहेन्जोदड़ो सभ्यता के प्रमाण मिलते हैं। इस

सभ्यता पर वेदिक सभ्यता का प्रभाव भी काफ़ी प्रकट होता है, जिससे ऐतिहासिकों के सम्मुख यह प्रश्न है कि ईसा पूर्व १५०० (जोकि आर्यों के आगमन का दिनांक समझा गया था) से कहीं पहले, क्या आर्य वेदिक संस्कृति को लेकर भारत में आ चुके थे? और, आर्य जाति का मूल निवास स्थान क्या था? इस विचार पर ऐतिहासिकों में एक मत नहीं है। भारत में द्रविड जाति के पूर्वज संभवत: सुमेरियन सभ्यता के थे, और उनका मूल स्थान पश्चिमी एशया ही था। अर्यों के मूल स्थान के विषय में विभिन्न धारणायें प्रस्तुत किये गये हैं, कोई कहता है मध्य एशया और कोई यूरोप, यहाँ तक कि बाल गंगाधर तिलक के अनुसार आर्य लोग उत्तरीध्रुव कटिबंध से प्रव्रजित हुए थे।

जैसा भी हो आर्य वंशीय लोग, भारत में आये और पंजाब की नदियों के किनारे बसने लगे। फिर धीरे धीरे राजस्थान और गंगा की घाटी की ओर बढ़ने लगे। उस समय राजस्थान में आज की तरह मरु भूमि नहीं थी। उस काल में सरस्वती नदी जीवित ही थी और आर्यों ने उसके तट पर अपने घर बसाये। समय बीतने पर, सरस्वती वर्षा न होने के कारण अपक्षीण (decline) होने लगी, और उसके स्थान पर एक नई मरु-भूमि उत्पन्न हुई। संभव है कि अजमेर की पुष्कर झील इसी वेदिक सरस्वती की अवशेष हो। भूवैज्ञानिकों के अनुसार इस नदी का स्रोत यमुना के पास बहनेवाली घाघरा के साथ अम्बाला में था। आजकल हिन्दू धर्म वाले मानते हैं कि प्रयाग के संगम में गंगा, यमुना, सरस्वती तीनों मिलती हैं और अदृष्ट सरस्वती भूमि के नीचे बहती है।

आर्यों ने भारत को संस्कृत और वैदिक धर्म दिया, रामायण और महाभारत जैसे महान ग्रंथों की उन्होंने रचना की जोकि भारत की नहीं वरन् सारे संसार की ही संपत्ति है। जब आर्य भारत में समृद्ध होते गये

उसी समय पश्चिमी एशया से अनेक जातियाँ भारत में आती रहीं और मूल जातियों के साथ मिश्रित होती गईं, यहाँ तक कि आज इस उप-महाद्वीप में कोई नहीं निश्चय से कह सकता कि कौन आर्य है, कौन द्रविड़ और कौन मंगोल जाति का।

यहाँ हमारा भूवैज्ञानिक इतिहास का अन्त होता है और लिखित इतिहास का आरंभ.... । इस कहानी को सुनने के बाद, हमें विस्मय इस बात पर होता है कि पृथ्वी ने कितने परिवर्तन देखे; जहाँ आज बड़े बड़े शहर हैं, वहाँ पुराने समुद्र थे, जहाँ सभ्यता अपनी सर्वोच्च शिखरों पर पहुँची है वहीं प्राचीन मरु-भूमियाँ रही होंगी, और एक समय ऐसा भी था जब विश्व में पृथ्वी ही नहीं थी, और न सौर-संहित ही उत्पन्न हुआ था। किन्तु हम फिर भी पूछते हैं "उससे पहले क्या?"।

इस प्रश्न का कोई अन्त नहीं है, और उसके साथ हम यह सोचने लगते हैं कि मनुष्य चाहे कितना भी स्वार्थी और नीच क्यों न हो, उसमें उत्सुकता का अतुल्य गुण है, जिससे वह इन महान प्रश्नों को पूछ सकें और अपनी बुद्धि के प्रयोग से उनका उत्तर दे सकें।